*Registered under Act X X of 1847*

# मुद्राराक्षस



## राजनीति विषयक अपूर्व नाटक

विशाखदत्त के संस्कृत ग्रन्थ का भाषानुवाद,

भारतभूषण भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र रचित

त्रियपत्रिका सम्पादक म०कु० बाबू रामदीन सिंह संकलित
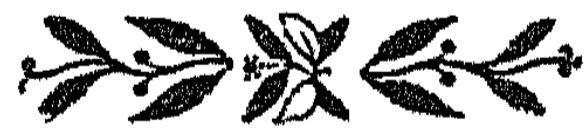
राय रामरणविजय सिंह बहादुर द्वारा प्रकाशित.

ह० सं० ४१—१९२५

बांकीपुर—खड्गविलास प्रेस में रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित।

आठवीं बार

परमश्रद्धास्पद

श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद बहादुर सी० एस० आई०

के

चरण कमलों में

केवल उन्ही के उत्साहदान से

उन के

वात्सल्यभाजन छात्र द्वारा बना हुआ

यह ग्रन्थ

सादर समर्पित हुआ।

## नाटक के पात्र ।
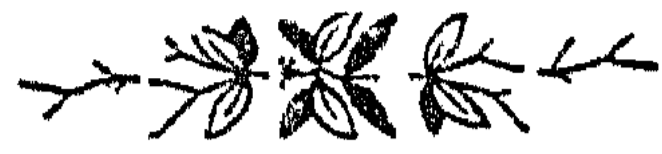
चन्द्रगुप्त—पटने का राजा ( नाटक का नायक )

राक्षस—नन्द का मन्त्री— ( नाटक का मुख्य पात्र )

चाणक्य—चन्द्रगुप्त का मन्त्री ( तथा )

मलयकेतु—पर्वतेश्वर राजा का पुत्र (नाटक का प्रतिनायक)

सिद्धार्थक—चाणक्य का भेदिया ।

चन्दनदास—पटने का जौहरी महाजन, राक्षस का मित्र ।

शकटदास—राक्षस का मित्र ।

विराधगुप्त—सपेरा बना हुआ राक्षस का भेदिया ।

प्रियम्बदक—राक्षस का सेवक ।

भागुरायण—चाणक्य का भेदिया ( प्रकट मे मलयकेतु का मित्र ) ।

करभक—राक्षस का भेदिया ।

क्षपणक—जैनी फकीर बना हुआ चाणक्य का भेदिया ।

भासुरक—भागुरायण का सेवक ।

समिद्धार्थक—सिद्धार्थक का मित्र ।

और भी—सूत्रधार, नटी, द्वारपाल, द्वारपालिका, प्रतिहारी शिष्य, कञ्चुकी, चन्दनदास की स्त्री, चन्दनदास का पुत्र, पुरुष, चाण्डाल, वन्दीजन और सेवक ।

# पूर्वकथा
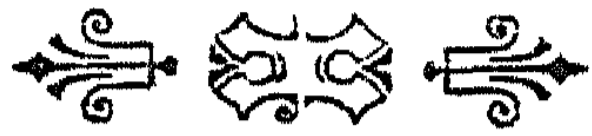
पूर्व काल में भारतवर्ष में मगधराज्य एक बड़ा भारी जनस्थान था। जरासन्ध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहां बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी। इन लोगों ने अपना प्रताप और शौर्य्य इतना बढ़ाया था कि आज तक इनका नाम भूमण्डल पर प्रसिद्ध है। किन्तु कालचक्र बड़ा प्रबल है कि किसी को भी एक अवस्था में रहने नहीं देता। अन्त में नन्दवंश * ने पौरवों को निकाल कर वहां अपनी जयपताका उड़ाई। वरञ्च सारे भारतवर्ष में अपना प्रबल प्रताप विस्तारित कर दिया।

इतिहासग्रन्थों में लिखित है कि एक सौ अड़तीस बरस नन्दवंश ने मगध देश का राज्य किया। इसी वंश में महानन्द का जन्म हुआ। यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यन्त प्रतापशाली राजा हुआ। जब जगद्विजयी सिकन्दर (अलक्षेन्द्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई किया था तब असंख्य हाथी, बीस हजार सवार और दो लाख पैदल लेकर महानन्द ने उस के विरुद्ध प्रयाण किया था ×। सिद्धान्त यह कि भारतवर्ष में उस समय महानन्द सा प्रतापी और कोई राजा न था।

महानन्द के दो मन्त्री थे। मुख्य का नाम शकटार और दूसरे

---

* चन्द्रवंश सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था। ये लोग शुद्ध क्षत्री नहीं थे।

× सिकन्दर के कान्यकुब्ज से आगे न बढ़ने से महानन्द से उस से मुक़ाबिला नहीं हुआ।

का राक्षस था। शकटार शूद्र और राक्षस * ब्राह्मण था। ये दोनों अत्यन्त बुद्धिमान् और महा ~तिभासम्पन्न थे। केवल भेद इतना था कि राक्षस धीर और गम्भीर था, उस के विरुद्ध शकटार अत्यन्त उद्धतस्वभाव था। यहा तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता। महानन्द भी अत्यन्त उग्रस्वभाव, असहनशील और क्रोधी था, जिस का परिणाम यह हुआ कि महानन्द ने अन्त को शकटार को क्रोधान्ध हो कर बड़े निबिड़ बन्दीखाने में कैद किया और सपरिवार उस के भोजन को केवल दो सेर सत्तू देता था + । १०

* बृहत्कथा में राक्षस मन्त्री का नाम कहीं नहीं है, केवल वररुचि से एक मच्चे राक्षस से मैत्री की कथा यों लिखी है—एक बड़ा प्रचण्ड राक्षस पाटलिपुत्र में फिरा करता था। वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि "इस नगर में कौन स्त्री सुन्दर है? वररुचि ने उत्तर दिया— जो जिस को रुचे वही सुन्दर है। इस पर प्रसन्न हो कर राक्षस ने उस से मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करेंगे और फिर सदा राजकाज में ध्यान में प्रत्यक्ष होकर राक्षस वररुचि की सहायता करता।

+ बृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है। वररुचि व्याडि और इन्द्रदत्त तीनों को गुरुदक्षिणा देने के हेतु करोड़ों रुपये के सोने की आवश्यकता हुई। तब इन लोगों ने सलाह किया कि नन्द (सत्यनन्द) राजा के पास चल कर उस से सोना लें। उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था ये तीनों ब्राह्मण वहां गये, किन्तु संयोग से उन्हीं दिनों राजा मर गया। तब आपस में सलाह करके इन्द्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़ कर राजा के शरीर में चला गया, जिस से राजा फिर जी उठा। तभी से उसका नाम योगानन्द हुआ। योगानन्द ने वररुचि को करोड़ रुपये देने की आज्ञा किया। शकटार बड़ा बुद्धिमान था उस ने सोचा कि राजा का मरकर जीना और एकबारगी एक अपरिचित को करोड़ रुपया देना इस में हो न हो कोई भेद है। ऐसा न हो कि अपना काम कर के फिर राजा का शरीर छोड़ कर यह चला जाय, यह सोच कर शकटार ने राज्य भर में जितने मुरदे मिले उन को जलवा दिया, उसी में इन्द्रदत्त का भी शरीर जल गया। तब व्याडि ने यह वृत्तान्त योगानन्द से कहा। तो

शकटार ने बहुत दिन तक महा-मात्य का अधिकार भोगा था, इस से यह अनादर उस के पक्ष मे अत्यन्त दुखदाई हुआ। नित्य सत्तू का बरतन हाथ मे लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नन्दवंश के जड़ से नाश करने मे समर्थ हो वह यह सत्तू खाय। मंत्री के इस वाक्य से दुःखित हो कर उस के परिवार का कोई भी सत्तू न खाता। अन्त मे कारागार की पीड़ा से एक एक कर के उस के परिवार के सब लोग मर गए। ५

एक तो अपमान का दुख, दूसरे कुटुम्ब का नाश, इन दोनो कारणों से शकटार अत्यन्त तनछीन मनमलीन दीन हीन हो गया। किन्तु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए और थोड़े बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रक्खा। रात दिन इसी सोच मे रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा। १० १५

कहते है कि राजा महानन्द एक दिन हाथ मुह धोकर हसते हसते जनाने मे आ रहे थे। विचक्षणा नाम की एक दासी जो राजा के मुह लगने के कारण कुछ धृष्ट हो गई थी, राजा को हसता देख कर हस पड़ी। राजा उस की ढिठाई से बहुत चिढ़े और उस से पूछा—तू क्यों हसी? उस ने उत्तर दिया—"जिस बात पर महाराज हँसे उसी पर मै भी हसी"। महानन्द इस बात पर और भी चिढ़ा। और कहा कि अभी बतला मैं क्यों हंसा, नहीं तो तुझ को प्राणदण्ड होगा। दासी से और कुछ उपाय न बन पड़ा और उसने घबड़ा कर इस के २०

---

यह सुन कर पहिले तो दुःखी हुआ फिर वररुचि को अपना मंत्री बनाया। परन्तु अन्त में शकटार की उग्रता से सन्तप्त हो कर उस को अन्धे कुए में कैद किया। बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल नाम लिखा है।

उत्तर देने को एक महीने की मुहलत चाही। राजा ने कहा—आज से ठीक एक महीने के भीतर जो उत्तर न देगी तो कभी तेरे प्राण न बचैंगे।

विचक्षणा के प्राण उस समय तो बचगए, परन्तु महीने के ५ जितने दिन बीतते थे, मारे चिन्ता के वह मरी जाती थी। कुछ सोच विचार कर वह एक दिन कुछ खाने पीने की सामग्री लेकर शकटार के पास गई और रो रो कर अपनी सब विपत्ति कहने लगी। मन्त्री ने कुछ देर तक सोच कर उस अवसर की सब घटना पूछी और हंस कर कहा—'मैं १० जान गया राजा क्यों हसे थे। कुल्ला करने के समय पानी के छोटे छींटों पर राजा को वटबीज की याद आई, और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बडे बड़ के वृक्ष इन्ही छोटे बीजों के अन्तर्गत है। किन्तु भूमि पर पडते ही वह जल के छींटे नाश हो गए। राजा अपनी इसी भावना को याद कर के हसते थे।" विचक्षणा ने हाथ जोड कर कहा—"यदि १५ आप के अनुमान से मेरे प्राण की रक्षा होगी तो मै जिस तरह से होगा, आप को कैदखाने से छुड़ाऊंगी और जन्म भर आप की दासी हो कर रहूंगी।"

राजा ने विचक्षणा से एक दिन फिर हसने का कारण २० पूछा, तो विचक्षणा ने शकटार से जैसा सुना था कह सुनाया। राजा ने चमत्कृत हो कर पूछा—"सच बता, तुझ से यह भेद किस ने कहा?" दासी ने शकटार का सब वृत्त कहा और राजा को शकटार की बुद्धि की प्रशसा करते देख अवसर पाकर उस के मुक्त होने की प्रार्थना भी २५ की। राजा ने शकटार को बन्दी से छुडा कर राक्षस के नीचे मन्त्री बना कर रक्खा।

ऐसे अवसर पर राजा लोग बहुत चूक जाते हैं।

पहिले तो किसी की अत्यन्त प्रतिष्ठा बढानी ही नीतिविरुद्ध है। यदि सयोग से बढ़ जाय तो उस की बहुत सी बातों को तरह देकर टालना चाहिए, और जो कदाचित् बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य का राजा अनादर करै तो उस की जड़ काट कर छोड़ै, फिर उस का कभी विश्वाश न करै। प्राय अमीर लोग पहले तो मुसाहिब या कारिन्दों को बेतरह सिर चढ़ाते है, और फिर छोटी छोटी बातो पर उन की प्रतिष्ठा हीन कर देते है। इसी से ऐसे लोग राजाओं के प्राण के गाहक हो जाते है और अन्त मे नन्द की भांति उन का सर्वनाश होता है।

शकटार यद्यपि बन्दीखाने से छूटा और छोटा मन्त्री भी हुआ, किन्तु अपनी अप्रतिष्ठा और परिवार के नाश का शोक उस के चित्त मे सदा पहिले ही सा जागता रहा। रात दिन वह यही सोचता कि किस उपाय से ऐसे अव्यवस्थित-चित्त उद्धत राजा का नाश करके अपना बदला लें। एक दिन घोड़े पर वह हवा खाने जाता था। नगर के बाहर एक स्थान पर देखता है कि एक काला सा ब्राह्मण अपनी कुटी के सामने मार्ग की कुशा उखाड़ उखाड़कर उस की जड़ मे मठा डालता जाता है। पसीने से लथपथ है, परन्तु कुछ भी शरीर की ओर ध्यान नही देता। चारो ओर कुशा के बड़े २ ढेर लगे हुए है। शकटार ने आश्चर्य्य से ब्राह्मण से इस श्रम का कारण पूछा। उसने कहा—"मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है। मैं ब्रह्मचर्य्य मे नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायन आदि ससार की उपयोगी सब विद्या पढ कर विवाह की इच्छा से नगर की ओर आया था, किन्तु कुश गड़ जाने से मेरे मनोरथ मे विघ्न हुआ, इस से जब तक इन बाधक कुशाओं का सर्वनाश न कर लूंगा और काम न करूंगा। मठा इस वास्ते इन की जड़ मे देता हूं जिस से पृथ्वी के भीतर इन का मूल भी भस्म हो जाय।"

शकटार के जी में यह ध्यान आया कि ऐसा पक्का ब्राह्मण जो किसी प्रकार राजा से क्रुद्ध हो जाय तो उस का जड़ से नाश कर के छोड़े। यह सोच कर उस ने चाणक्य से कहा कि जो आप नगर में चल कर पाठशाला स्थापित करें तो
५ अपने को मैं बड़ा अनुगृहीत समझूं। मैं इस के नक्ले बेलदार लगा कर यहां की सब कुशाओं को खुदवा डालूंगा। चाणक्य इस पर सम्मत हुआ और नगर में आकर एक पाठशाला स्थापित की। बहुत से विद्यार्थी लोग पढ़ने आने लगे और पाठशाला बड़े धूमधाम से चल निकली।

१० अब शकटार इस सोच में हुआ कि चाणक्य से राजा से किस चाल से बिगाड़ हो। एक दिन राजा के घर में श्राद्ध था उस अवसर को शकटार ने अपने मनोरथ सिद्ध होने का अच्छा समय सोच कर चाणक्य को श्राद्ध का न्यौता दे कर अपने साथ ले आया और श्राद्ध के आसन पर बिठला कर
१५ चला गया। क्योंकि वह जानता था कि चाणक्य का रंग काला, आंखें लाल और दांत काले होने के कारण नन्द उस को आसन पर से उठा देगा, जिस से चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध हो कर उस का सर्वनाश करैगा।

और ठीक ऐसा ही हुआ—जब राक्षस के साथ नन्द
२० श्राद्धशाला में आया और एक अनिमन्त्रित ब्राह्मण को आसन पर बैठा हुआ और श्राद्ध के अयोग्य देखा तो चिढ़ कर आज्ञा दिया कि इस को बाल पकड़ कर यहां से निकाल दो। इस अपमान से ठोकर खाए हुए सर्प की भांति अत्यन्त क्रोधित हो कर शिखा खोल कर चाणक्य ने सब के सामने प्रतिज्ञा
२५ की कि जब तक इस दुष्ट राजा का सत्यानाश न कर लूंगा तब तक शिखा न बांधूंगा। यह प्रतिज्ञा कर के बड़े क्रोध से राज-भवन से चला गया।

शकटार अवसर पाकर चाणक्य को मार्ग में से अपने घर ले आया और राजा को अनेक निन्दा कर के उस का क्रोध और भी बढ़ाया और अपनी सब दुर्दशा कह कर नन्द के नाश मे सहायता करने की प्रतिज्ञा किया। चाणक्य ने कहा कि जब तक हम राजा के घर का भीतरी हाल न जानै कोई उपाय नही सोच सकते। शकटार ने इस विषय मे विचक्षणा की सहायता देने का वृत्तान्त कहा और रात को एकान्त मे बुला कर चाणक्य के सामने उस से सब बात का करार ले लिया।

महानन्द को नौ पुत्र थे। आठ विवाहिता रानी से और एक चन्द्रगुप्त मुरा नाम की नाइन स्त्री से। इसी से चन्द्रगुप्त को मौर्य और वृषल भी कहते है। चन्द्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान् था इसी से और आठो भाई इस से भीतरी द्वेष रखते थे। चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी की बहुत सी कहानिया है। कहते है कि एक बेर रूम के बादशाह ने महानन्द के पास एक कृत्रिम सिंह लोहे की जाली के पिजड़े मे बन्द करके भेजा और कहला दिया कि पिजड़ा टूटने न पावे और सिंह इस मे से निकल जाय। महानन्द और उस के आठ औरस पुत्रों ने इस को बहुत कुछ सोचा, परन्तु बुद्धि ने कुछ काम न किया। चन्द्रगुप्त ने विचारा कि यह सिंह अवश्य किसी ऐसे पदार्थ का बना होगा जो या तो पानी से या आग से गल जाय यह सोच कर पहले उसने उस पिजड़े को पानी के कुण्ड मे रक्खा और जब वह पानी से न गला तो उस पिजड़े के चारो तरफ आग बलवाई, जिस की गर्मी से वह सिंह, जो लाह और राल का बना था, गल गया। एक बेर ऐसे ही किसी बादशाह ने एक अगीठी मे दहकती हुई आग * एक बोरा सरसों और

* दहकती आग की कथा—"जरासन्धमहाकाव्य" में लिखा है कि जरासन्ध ने उग्रसेन के पास अगीठी भेजी थी, शायद उसी से यह कथा निकाली गई हो।

एक मीठा फल महानन्द के पास अपने दूत के द्वारा भेज दिया। राजा की सभा का कोई भी मनुष्य इस का आशय न समझ सका, किन्तु चन्द्रगुप्त ने सोच कर कहा कि अगीठी यह दिखलाने को भेजी है कि मेरा क्रोध अग्नि है और सर सों यह सूचन कराती है कि मेरी सैना असख्य है और फल भेजने का आशय यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है। इन के उत्तर में चन्द्रगुप्त ने एक घड़ा जल और एक पिजडे मे थोडे से तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा, जिस का आशय यह था कि तुम्हारी सेना कितनी भी असख्य क्यो न हो हमारे वीर उस को भक्षण करने मे समर्थ है और तुम्हारा क्रोध हमारी नीति से सहज ही बुझाया जा सकता है और हमारी

---

सवैया—रूप की रूपनिधान अनूप अगीठी नई गढि मोल मगाई।
ता मधि पावकपुज धरयो गिरिधारन जामें प्रभा अधिकाई ॥
तेज सो ताके तलाई भई रज मै मिली आसु सबै रजताई।
मानो प्रबाल की थाल बनाय कै लाल की रास बिसाल लगाई ॥ १ ॥
ताकि कै पावक दूत के हाथ दै बात कही इहि भाति बुझाय कै।
भोज भुआल सभा मह स मुख राखि कै यो कहियो सिर नाय कै ॥
याहि पठायो जरासुत नै अवलोकहु नीके अधीरन लाय कै।
पुत्र खपाय कै नातिन पाय कै जी हो जै पाय कै कौन उपाय कै ॥ २ ॥
दोहा—सुनत चार तिहि हाथ लै, गयो भैम दरबार।
वासम ऐसै कैक सब, जहं बैठे सरदार ॥ ३ ॥
अटिल्ल—जायजरासुतदूतभैमपतिपदपरयो। लखि नराऊ जगहहियेसभ्रमभरयो।
जगतजरावनद्रव्यपातआगेधरयो। सोचनराहवै अभय हाल बरननकरयो ॥४॥
सुनिन्हिसैजदुवीरजीतकीचायसो। हसि बोले गोविद कहहु यह रायसो।
उचितससुरपन कीन चक्रकुन यायसो। चही दमाद सहाय सुताको हायसो॥५
सोरठा—इमि कहि द्रुत गहि चाय, आप आप सिखि मै दियो।
तुरतहि गयो बुझाय, ज्ञान पाय मन भ्रात जिमि ॥ ६ ॥
बिदा कियो नृप दूत, उर मै सर का य क करि।
निरखि बृहदरथ पूत, सबन सहित कोप्यो अतिहि ॥ ७ ॥

मित्रता सदा अमूल्य और एक रस है। ऐसे ही तीन पुतली-वाली कहानी भी इसी के साथ प्रसिद्ध है। इसी बुद्धिमानी के कारण चन्द्रगुप्त से उस के भाई लोग बुरा मानते थे; और महानन्द भी अपने औरस पुत्रों का पक्ष कर के इस से कुढ़ता था। यह यद्यपि शूद्रा के गर्भ से था, परन्तु ज्येष्ठ होने के कारण अपने को राज का भागी समझता था, और इसी से इस का राजपरिवार से पूर्ण वैमनस्य था। चाणक्य और शकटार ने इसीसे निश्चय किया कि हम लोग चन्द्रगुप्त को राज का लोभ देकर अपनी ओर मिला लें और नन्दों का नाश कर के इसी को राजा बनावें।

यह सब सलाह पक्की हो जाने के पीछे चाणक्य तो अपनी पुरानी कुटी में चला गया और शकटार ने चन्द्रगुप्त और विचक्षणा को तब तक सिखा पढ़ा कर पक्का कर के अपनी ओर फोड़ लिया। चाणक्य ने कुटी में जाकर हलाहल विष मिले हुए कुछ ऐसे पकवान तैयार किये जो परीक्षा करने में न पकड़े जाय, किन्तु खाते ही प्राण नाश होजाय। विचक्षणा ने किसी प्रकार से महानन्द को पुत्रों समेत यह पकवान खिला दिया, जिस से बेचारे सब के सब एक साथ परमधाम को सिधारे *।

* भारतवर्ष की कथाओं में लिखा है कि चाणक्य ने अभिचार से मारण का प्रयोग कर के इन सभों को मार डाला। विचक्षणा ने उस अभिचार का निर्माल्य किसी प्रकार इन लोगों के अंग में छुला दिया था। किंतु वर्तमान काल के विद्वान् लोग सोचते हैं कि उस निर्माल्य में मन्त्र का बल नहीं था, चाणक्य ने कुछ औषधि ऐसे विषमिश्रित बनाये थे कि जिन के भोजन वा स्पर्श से मनुष्य का सद्य नाश हो जाय। भट्ट सोमदेव के कथा सरित्सागर के पीठलम्ब के चौथे तरंग में लिखा है—योगानन्द को ऊंची अवस्था में नये प्रकार की कामवासना उत्पन्न हुई।

चन्द्रगुप्त इस समय चाणक्य के साथ था। शकटार अपने दुःख और शापों से सन्तप्त हो कर निविड़ बन मे चला गया और अनसन कर के प्राण त्याग किये। कोई कोई इतिहासलेखक कहते हैं कि चाणक्य ने अपने हाथ से शस्त्रद्वारा नन्द का वध किया और फिर क्रम से उसके पुत्रों को भी मारा, किन्तु इस

---

वररुचि ने यह सोच कर कि राजा को तो भोगविलास से छुट्टी ही नहीं है, इस से राजकाज का काम शकटार निकाला जाय तो अच्छी तरह से चले। यह विचार कर और राजा से पूछ कर शकटार को अंधे कूए से निकाल कर वररुचि ने मन्त्रीपद पर नियत किया। एकदिन शिकार खेलने में गंगा में राजा ने अपनी पांचो उंगली की परछाईं वररुचि को दिखलाया। वररुचि ने अपनी दो उंगलियो की परछाईं ऊपर से दिखाई, जिस से राजा के हाथ की परछाईं छिप गई। राजा ने इन संज्ञाओं का कारण पूछा। वररुचि ने कहा—आप का यह आशय था कि पांच मनुष्य मिल कर सब कार्य साध सकते हैं। मैं ने यह कहा कि जो दो चित्त एक हो जाय तो पांच का बल व्यर्थ है। इस बात पर राजा ने वररुचि की बड़ी स्तुति किया। एक दिन राजा ने अपनी रानी को एक ब्राह्मण से खिड़की में से बात करते देख के उस ब्राह्मण को मारने की आज्ञा किया, किन्तु अनेक कारणों से वह बच गया। वररुचि ने कहा कि आप के सब महल की यही दशा है और अनेक स्त्रीवेषधारी पुरुष महल में रहते हैं और उन सबों को पकड़ कर दिखला दिया और इसी से उस ब्राह्मण के प्राण बचे। एक दिन योगानन्द की रानी के एक चित्र में जो महल मे लगा हुआ था, वररुचि ने जांघ में तिल बना दिया। योगानन्द को गुप्त स्थान में वररुचि के तिल बनाने से उस पर भी सन्देह हुआ और शकटार को आज्ञा दिया कि तुम वररुचि को आज ही रात को मार डालो। शकटार ने उस को अपने घर में छिपा रक्खा और किसी और को उस के बदले मार कर उसका मारना प्रकट किया। एक बेर राजा का पुत्र हिरण्यगुप्त जंगल मे शिकार खेलने गया था, वहां रात को सिंह के भय से एक पेड़ पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर एक भालू था, किन्तु इस ने उस को अभय दिया। इन दोनों में यह बात ठहरी कि आधी रात तक कुंवर सोवे भालू पहरा

विषय का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। चाहे जिस प्रकार से हो चाणक्य ने नन्दों का नाश किया, किन्तु केवल पुत्र सहित राजा के मारने ही से वह चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर न बैठा सका, इस से अपने अन्तरंग मित्र जीवसिद्धि को क्षपणक के वेष में राक्षस के पास छोड़कर आप राजा लोगों से सहायता लेने की इच्छा से विदेश निकला। अन्त में अफगानिस्तान वा उस के उत्तर ओर के निवासी पर्वतक नामक लोभपरतन्त्र एक राजा से मिलकर और उस को जीतने के पीछे मगध राज्य का आधा भाग देने के नियम पर उस को पटने पर चढा लाया। पर्वतक के भाई का नाम वैरोधक * और पुत्र का

---

-, फिर भालू सोवै कुंवर पहरा दे। भालू ने अपना मित्रधर्म्म निबाहा और सिंह के बहकाने पर भी कुंअर की रक्षा किया। किन्तु अपनी पारी में कुंअर ने सिंह के बहकाने से भालू को ढकेलना चाहा, जिस पर उस ने जाग कर मित्रता के कारण कुंवर को मारा तो नहीं किन्तु कान में मूत दिया, जिस से कुंवर गूंगा और बहिरा हो गया। राजा को बेटे की इस दुर्दशा पर बड़ा सोच हुआ और कहा कि वररुचि जीता होता तो इस समय उपाय सोचता। शकटार ने यह अवसर समझ कर राजा से कहा कि वररुचि जीता है और लाकर राजा के सामने खड़ा कर दिया। वररुचि ने कहा—कुंवर ने मित्रद्रोह किया है उस का फल है। यह वृत्त कह कर उस को उपाय से अच्छा किया। राजा ने पूछा—तुम ने यह सब वृत्तान्त किस तरह जाना? वररुचि ने कहा-योगबल से, जैसे रानी का तिल। (ठीक यही कहानी राजा भोज, उस की रानी भानुमती और उस के पुत्र और कालिदास की भी प्रसिद्ध है) यह सब कह कर और उदास हो कर वररुचि जंगल में चला गया। वररुचि से शकटार ने राजा को मारने को कहा था, किन्तु वह धर्मिष्ठ था इस से सम्मत न हुआ। वररुचि के चले जाने पर शकटार ने अवसर पा कर चाणक्य द्वारा कृत्या से नन्द को मारा।

* लिखी पुस्तकों में यह नाम विरोधक, वैरोधक, वैरोचक वैबोधक, विरोध, वैराध इत्यादि कई चाल से लिखा है।

मलयकेतु था। और भी पाच म्लेच्छ राजाओ को पर्वतक अपने सहायता को लाया था।

इधर राक्षस मन्त्री राजा के मरने से दुःखी होकर उस के भाई सर्वार्थसिद्धि को सिंहासन पर बैठा कर राजकाज
५ चलाने लगा। चाणक्य ने पर्वतक की सैना लेकर कुसुमपुर को चारो ओर से घेर लिया। पन्द्रह दिन तक घोरतर युद्ध हुआ। राक्षस की सेना और नागरिक लोग लड़ते २ शिथिल हो गए, इसी समय मे गुप्त रीति से जीवसिद्धि के बहकाने से राजा सर्वार्थसिद्धि बैरागी हो कर बन मे
१० चला गया, इस कुसमय मे राजा के चले जाने से राक्षस और भी उदास हुआ। चन्दनदास नामक एक बड़े धनी जौहरी के घर मे अपने कुटुम्ब को छोड़ कर और शकट दास कायस्थ तथा अनेक राजनीति जाननेवाले विश्वास-पात्र मित्रों को और कई आवश्यक काम सौंप कर
१५ राजा सर्वार्थसिद्धि के फेर लाने को आप तपोवन की ओर गया।

चाणक्य ने जीवसिद्धिद्वारा यह सब सुन कर राक्षस के पहुचने के पहले ही अपने मनुष्यों से राजा सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला। राक्षस जब तपोवन मे पहुचा और
२० सर्वार्थसिद्धि को मरा देखा तो अत्यन्त उदास हो कर वही रहने लगा। यद्यपि सर्वार्थसिद्धि के मार डालने से चाणक्य की नन्दकुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, किन्तु उस ने सोचा कि जब तक राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री न होगा तब तक राज्य स्थिर न होगा। वरच बड़े
२५ विनय से तपोवन मे राक्षस के पास मन्त्रित्व स्वीकार करने का सन्देसा भेजा, परन्तु प्रभुभक्त राक्षस ने उस को स्वीकार नही किया।

तपोवन मे कई दिन रह कर राक्षस ने यह सोचा कि जब तक पर्वतक को हम न फोड़ेंगे काम न चलेगा। यह सोच कर वह पर्वतक के राज्य में गया और वहा उस के बूढ़े मन्त्री से कहा कि चाणक्य बड़ा दगाबाज है, वह आधा राज कभी न देगा। आप राजा को लिखिए, वह मुझ से मिले तो मै सब राज्य उन को दूं। मन्त्री ने पत्रद्वारा पर्वतक को यह सब वृत्त और राक्षस की नीतिकुशलता लिख भेजा और यह भी लिखा कि मै अत्यन्त वृद्ध हूं, आगे से मन्त्री का काम राक्षस को दीजिये। पाटलिपुत्र विजय होने पर भी चाणक्य आधा राज्य देने में विलम्ब करता है, यह देख कर सहज लोभी पर्वतक ने मन्त्री की बात मानली और पत्रद्वारा राक्षस को गुप्त रीति से अपना मुख्य अमात्य बना कर इधर ऊपर वे चित्त से चाणक्य से मिला रहा।

जीवसिद्धि क द्वारा चाणक्य ने राक्षस का सब हाल जान कर अत्यन्त सावधानतापूर्वक चलना आरम्भ किया। अनेक भाषा जाननेवाले बहुत से धूर्त पुरुषों को वेष बदल बदल कर भेद लेने को चारो ओर नियुक्त किया। चन्द्रगुप्त को राक्षस का कोई गुप्तचर धोखे से किसी प्रकार की हानि न पहुचावे इस का भी पक्का प्रबन्ध किया और पर्वतक की विश्वासघातकता का बदला लने का दृढ़ सकल्प से, परन्तु अत्यन्त गुप्त रूप से, उपाय सोचने लगा।

राक्षस ने केवल पर्वतक की सहायता से राज के मिलने की आशा छोड़ कर * कुलूत, मलय, काश्मीर, सिन्धु और पारस इन पांच देशों के राजा से सहायता ली। जब इन पाचों देश के

---

* कुलूत देश विलात वा कुल्लू देश।

राजाओं ने बड़े आदर से राक्षस को सहायता देना स्वीकार किया तो वह तपोवन के निकट फिर से लौट आया और वहा से चन्द्रगुप्त के मारने को एक विषकन्या+ भेजी और अपना विश्वासपात्र समझ कर जीवसिद्धि को उस के साथ कर दिया। चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब बात जान कर और पर्वतक की धूर्तता और विश्वासघातकता से क्रुद्ध कर प्रकट मे इस उपहार को बडी प्रसन्नता से ग्रहण किया और लानेवाले को बहुत सा पुरस्कार देकर बिदा किया। साझ होने के पीछे धूर्ताधिराज चाणक्य ने इस कन्या को पर्वतक के पास भेज दिया और इन्द्रियलोलुप पर्वतक उसी रात को उस कन्या के सग से मर गया। इधर चाणक्य ने यह सोचा कि मलयकेतु यहा रहेगा तो उस को राज्य का हिस्सा देना पडेगा, इस से किसी तरह इस को यहा से भगावे तो काम चले। इस कार्य्य के हेतु भागुरायण नामक एक प्रतिष्ठित विश्वासपात्र पुरुष को मलयकेतु के पास सिखा पढ़ा कर भेज दिया। उस ने पिछली रात को मलयकेतु से जा कर उस का बड़ा हित बन कर उस से कहा कि आज चाणक्य ने विश्वासघातकता कर के आप के पिता को विषकन्या के प्रयोग से मार डाला और औसर पाकर आप को भी मार डालेगा। मलयकेतु बेचारा इस बात के सुनते ही सन्न हो गया और पिता के शयनागार मे

+ विषक या शास्त्रो में दो प्रकार की लिखी है। एक तो थोडे से ऐसे बुरे योग हैं कि उस लग्न में उस प्रकार के ग्रहो के समय जो कन्या उत्पन्न हो उस के साथ जिस का विवाह हो वा जो उन का साथ करे वह साथ ही वा शीघ्र हो मर जाता है। दूसरे प्रकार की विषक या वैदयक रीति से बनाई जाती थी। छोटेपन से बरन गर्भ से कन्या का दूध में वा भोजन में थोडा २ विष देते देते बडी होने पर उस का शरीर ऐसा विषमय हो जाता था कि जो उस का अग सग करता वह मर जाता।

जाकर देखा तो पर्वतक को बिछौने पर मरा हुआ पाया। इस भयानक दृश्य के देखते ही मुग्ध मलयकेतु के प्राण सूख गये और भागुरायण का सलाह से उस रात को छिप कर वहा से भाग कर अपने राज्य की ओर चला गया । इधर चाणक्य के सिखाये भद्रभट इत्यादि चन्द्रगुप्त के कई बड़े २ अधिकारी प्रगट में राजद्रोही बन कर मलयकेतु और भागुरायण के साथ ही भाग गये । ५

राक्षस ने मलयकेतु से पर्वतक के मारे जाने का समाचार सुन कर अत्यन्त सोच किया और बड़े आग्रह और सावधानी से चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्टसाधन मे प्रवृत्त हुआ । १०

चाणक्य ने कुसुमपुर मे दूसरे दिन यह प्रसिद्ध कर दिया कि पर्वतक और चन्द्रगुप्त दोनों समान बन्धु थे, इस से राक्षस ने विषकन्या भेज कर पर्वतक को मार डाला और नगर के लोगों के चित्त पर, जिन को कि यह सब गुप्त अनुसन्धि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया । १५

इस के पीछे चाणक्य और राक्षस के परस्पर नीति की जो चोटे चली है, उसी का इस नाटक मे वर्णन है ।

—:*:—

महाकवि विशाखदत्त का बनाया

# मुद्राराक्षस नाटक ।

स्थान रङ्गभूमि ।

रंगशाला में नान्दी मङ्गलपाठ करता है ।

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥१॥
कौन है सीस पै' 'चन्द्रकला' कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी ।
'हां यही नाम है भूल गई किमि जानत हू तुम प्रान पियारी' ॥
'नारिहि पूछत चन्द्रहि नाहिं' 'कहै बिजया जदि चन्द्र लबारी' । ५
यों गिरिजै छलि गंग छिपावत ईस हरौ सब पीर तुम्हारी ॥२॥
पाद प्रहार सों जाइ पताल न भूमि सबै तनु बोझ के मारे ।
हाथ नचाइबे सों नभ मैं इत के उत टूटि परैं नहिं तारे ॥
देखन सों जरि जाहिं न लोक न खोलत नैन कृपा उर धारे ।
यों थल के बिनु कष्ट सों नाचत शर्व हरौ दुख सर्व तुम्हारे ॥३॥ *१०

---

* संस्कृत का मंगलाचरण —

धन्या। केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला, किन्तु नामैतदस्या
नामैवास्यास्तदेतत्, परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः ।
नारीं पृच्छामि नेन्दुं, कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु
र्देव्या। निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः ॥१॥

नान्दी पाठ के अनन्तर* ।

सूत्रधार ।—बस ! बहुत मत बढाओ, सुनो, आज मुझे सभासदों की आज्ञा है कि सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त कवि का बनाया मुद्राराक्षस
५ नाटक खेलो । सच है, जो सभा काव्य के गुण और दोष को सब भांति समझती है, उस के सामने खेलने में मेरा भी चित्त सतुष्ट होता है ।

---

और भी

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने—रक्षतः स्वैरपातैः
स्सङ्कोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयतः सर्व्वलोकातिगानाम ।
दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्रां ज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते
रित्याधारानुरोधात त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्यम ॥२॥

अर्थ ।

'यह आप के सिर पर कौन बडभागिनी है ?' 'शशिकला है ।' 'क्या इस का यही नाम है ?' 'हां, यही तो तुम तो जानती हो फिर क्यों भूल गई ।' 'अजी हम स्त्री को पूछती हैं चन्द्रमा को नहीं पूछती' 'अच्छा चन्द्र की बात का विश्वास न हो तो अपनी सखी विजया से पूछ लो ।' यों ही बात बना कर गंगा जी को छिपा कर देवी पार्वती को ठगने की इच्छा करने वाले महादेव जी का छल तुमलोगों की रक्षा करै ।

दूसरा ।

पृथ्वी झुकने के डर से इच्छानुसार पैर का बोझ नहीं दे सकते ऊपर के लोकों के इधर उधर हो जाने के भय से हाथ भी यथेच्छ नहीं फेंक सकते, और उस के अग्निकण से जल जायगे इसी ध्यान से किसी की ओर भर दृष्टि देख भी नहीं सकते, इस से आधार के सकोच से महादेव जी का कष्ट से नृत्य करना तुम्हारी रक्षा करै ।

* नाटकों में पहले मंगलाचरण कर के तब खेल आरम्भ करते हैं । इस मंगलाचरण को नाटकशास्त्र में नान्दी कहते हैं । किसी का मत है कि नान्दी पहले ब्राह्मण पढता है, कोई कहता है सूत्रधार ही और किसी का मत है कि परदे के भीतर से नान्दी पढी या गाई जाय ।

उपजै आछे खेत मे, मूरखहू के धान।
सधन होन मै धान के, चहिय न गुनी किसान॥ ४॥

तो अब मै घर से सुघर घरनी को बुलाकर कुछ गाने बजाने का ढग जमाऊ (घूम कर) यही मेरा घर है, चलू। (आगे बढ़ कर) अहा! आज तो मेरे घर मे कोई उत्सव जान पड़ता है, क्योंकि घर-वाले सब अपने अपने काम मे चूर हो रहे है। ५

पीसत कोऊ सुगन्ध कोऊ जल भरि कै लावत।
कोऊ बैठि कै रग रग की माल बनावत॥
कहु तिय गन हु कार सहित अति श्रवन सोहावत। १०
होत मुशल को शब्द सुखद जियको सुनि भावत ॥५॥

जो हो घर से स्त्री को बुला कर पूछ लेता हं (नेपथ्य की ओर)

री गुनवारी सब उपाय की जाननवारी।
घर की राखनवारी सब कुछ साधनवारी॥
मो गृह नीति सरूप काज सब करन सवारी। १५
बेगि आउरी नटी बिलम्ब न करु सुनि प्यारी ॥६॥

(नटी आती है)

नटी।—आर्य्यपुत्र! * मै आई, अनुग्रहपूर्वक कुछ आज्ञा दीजिये।

सूत्र०। -प्यारी, आज्ञा पीछे दी जायगी, पहिले यह बता कि आज ब्राह्मणों का न्योता कर के तुम ने इस कुटुम्ब के लोगो पर क्यों अनुग्रह किया है? या आप ही से आज अतिथि लोगो ने कृपा किया है कि ऐसे धूम से रसोई चढ़ रही है? २०

नटी।—आर्य्य! मै ने ब्राह्मणों को न्यौता दिया है। २५

सूत्र०।—क्यो? किस निमित्त से?

---

* संस्कृत मुहाविरे मे पति को स्त्रिया आर्य्यपुत्र कह कर पुकारती हैं।

नटी।—चन्द्रग्रहण लगने वाला है।

सूत्र०।—कौन कहता है?

नटी।—नगर के लोगों के मुंह सुना है।

सूत्र०।—प्यारी! मैंने ज्योति शास्त्र के चौसठों * अंगों में बड़ा
५ परिश्रम किया है। जो हो, रसोई तो होने दो + पर आज
तो गहन है यह तो किसी ने तुझे धोखाही दिया है क्योंकि—
चन्द्रबिम्ब पूरन भए क्रूरकेतु × हठ दाप।

---

* होरा मुहूर्त्त जातक ताजक रमल इत्यादि।

+ अर्थात ग्रहण का योग तो कदापि नहीं है। खैर रसोई हो।

× केतु अर्थात राक्षस मंत्री। राक्षस मंत्री ब्राह्मण था और केवल नाम उस का राक्षस था किंतु गुण उस में देवताओं के थे।

केतु ग्रह का और हाल पुस्तक के अंत में लिखा है।

—इस श्लोक का यथार्थ तात्पर्य्य जानने को काशी संस्कृत विद्यालय के प्रधान जगद्विख्यात पण्डितवर बापूदेव शास्त्री को मैने पत्र लिखा। क्योंकि टीकाकारो ने "चन्द्रमा पूर्ण होने पर" यही अर्थ किया है और इस अर्थ से मेरा जी नहीं भरा। कारण यह कि पूर्ण चन्द्र में तो ग्रहण लगता ही है, इस में विशेष क्या हुआ? शास्त्री जी ने जो उत्तर दिया है वह यहां प्रकाशित होता है।

श्रीयुत बाबू साहिब को बापूदेव का कोटिश आशीर्वाद, आपने प्रश्न लिख भेजे उन का सन्क्षेप से उत्तर लिखता हूं।

१ सूर्य्य के अस्त हो जाने पर जो रात्रि में अंधकार होता है यही पृथ्वी की छाया है और पृथ्वी गोलाकार है और सूर्य्य से छोटी है इस लिये उसकी छाया सूच्याकार शंकु के आकार की होती है और यह आकाश में चन्द्र के भ्रमणमार्ग को लांघ के बहुत दूर तक सदा सूर्य्य से छः राशि के अंतर पर रहती है, और पूर्णिमा के अंत में चन्द्रमा भी सूर्य्य से छः राशि के अंतर पर रहता है। इस लिए जिस पूर्णिमा में चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है अर्थात पृथ्वी की छाया चन्द्रमा के बिम्ब पर पड़ती है तभी वह चन्द्र का ग्रहण कहलाता है और छाया जो चन्द्रबिम्ब पर दख पड़ती है वही ग्रास कहलाता है। और राहु नामक एक दैत्य प्रसिद्ध है वह चन्द्रग्रहणकाल में पृथ्वी की छाया में प्रवेश कर के चन्द्र की ओर प्रजा को पीड़ा करता है, इसी कारण

बल सों करि हैं ग्रास कह—

( नेपथ्य में )

है ! मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र०।— जेहि बुध रच्छत आप ॥७॥

---

से लोक में राहुकृत ग्रहण कहलाता है और उस काल में स्नान, दान, जप, होम इत्यादि करने से वह राहुकृत पीडा दूर होती है और बहुत पुण्य होता है।

२ पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण होने का कारण ऊपर लिखा ही है और पूर्णिमा में चन्द्रबिम्ब भी सम्पूर्ण उज्ज्वल होता है तभी चन्द्रग्रहण होता है।

३ जब कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण होता है, इस से पूर्णिमा में चन्द्रमा का और बुध का योग कभी नहीं होता ( क्योंकि बुध सर्वदा सूर्य्य के पास रहता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य्य चन्द्रमा से छः राशि के अन्तर पर रहता है, इस लिये बुध भी उस दिन चन्द्र से दूर ही रहता है) यो बुध के योग में चन्द्रग्रहण कभी नहीं हो सकता। इति शिवम्। सवत् १९३७ ज्येष्ठ शुक्ल १५ मंगल दिन, मंगल मंगलं भूयात्।

शास्त्री जी से एक दिन मुझे इस विषय में फिर वार्ता हुई। शास्त्री जी को मैं ने मुद्राराक्षस की पुस्तक भी दिखलाई। इस पर शास्त्री जी ने कहा कि मुझ को ऐसा मालूम होता है कि यदि उस दिन उपराग का सम्भव होगा तो सूर्यग्रहण का क्योंकि बुधयोग अमावस्या के पास होता भी है। पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि राहु चन्द्रमा का ग्रहण करता है और केतु सूर्य्य का, और इस श्लोक में केतु का नाम भी है। इस से भी सम्भव होता है कि सूर्य्यउपराग रहा हो। तो चाणक्य का कहना भी ठीक हुआ कि केतु हठपूर्वक क्यों चन्द्र को ग्रसा चाहता है अर्थात् एक तो चन्द्रग्रहण का दिन नहीं दूसरे केतु का चन्द्रमा ग्रास का विषय नहीं क्योंकि नन्द वीर्य्यजात होने से चन्द्रगुप्त राक्षस का वध्य नहीं है। इस अवस्था में 'चन्द्रम् असम्पूर्ण मण्डल' चन्द्रमा का अधूरा मण्डल यह अर्थ करना पडेगा। तब छन्द में 'चन्द्र बिम्ब पूरन भए' के स्थान पर 'बिना चन्द्र पूरन भए' पढ़ना चाहिए।

बुध का बिम्ब प्राचीन भास्कराचार्य्य के मतानुसार छः कला पन्द्रह बिकला के लगभग है परन्तु नवीनों के मत से केवल दश बिकला परम है।

परन्तु इस में कुछ सन्देह नहीं कि यह ग्रह बहुत छोटा है क्योंकि प्राचीनों को इस का ज्ञान बहुत कठिनता से हुआ है इसी लिए इस का नाम ही बुध, ज्ञ, इत्यादि हो गया। यह पृथ्वी से १८९३७७ इतने योजन की दूरी पर मध्यम मान से रहता है और सदा सूर्य्य के अनुचर के समान सूर्य्य के पास ही रहता है, एक पाद अर्थात् तीन राशि

नटी ।—आर्य्य ! यह पृथ्वी ही पर से चन्द्रमा को कौन बचाना चाहता है ?

सूत्र०।—प्यारी, मै ने भी नही लखा, देखो, अब फिर से वही पढता हू और अब जब वह फिर बोलैगा तो मै उस की बोली से पहिचान लूगा कि कौन है ।

---

भी सूर्य्य से आगे नही जाता । विरसन ने केतु शब्द से मलयकेतु का ग्रहण किया है । इस मे भी एक प्रकार का अलकार अच्छा रहता है ।

चमत्कृत बुद्धिसम्पन्न पण्डित सुधाकर जी ने इस विषय में जो लिखा है वह विचित्र ही है । वह भी प्रकाश किया जाता है—

करत अधिक अधियार वह, मिलि मिलि करि हरिचद ।
द्विजराजहु विकसित करत, धनि धनि यह हरिचद ॥

श्री बाबू साहब को हमारे अनेक आशीर्वाद,

महाशय !

चद्रग्रहण का सम्भव भूछाया के कारण प्रति पूर्णिमा के अत में होता है और उस समय में केतु और सूर्य्य साथ रहते हैं । परन्तु केतु और सूर्य्य का योग यदि नियत सख्या के अर्थात पाच राशि सोलह अश से लेकर छ राशि चौदह अश के वा ग्यारह राशि सोरह अश से लेकर बारह राशि चौदह अश के भीतर होता है तब ग्रहण होता है और यदि योग नियत सख्या के बाहर पड जाता है तब ग्रहण नही होता इस लिये सूर्य्य केतु के योगही के कारण से प्रत्येक पूर्णिमा मे ग्रहण नही होता । तब

क्रूरग्रह स केतुश्चद्रमस पूर्णमण्डलमिदानीम ।
अभिभवितुमिच्छति बलाद्रक्षत्येन तु बुधयोग ॥

इस श्लोक का यथार्थ अर्थ यह है कि क्रूरग्रह सूर्य्य केतु के साथ चद्रमा के पूर्णमण्डल को यून करने की इच्छा करता है परतु हे बुध ! योग जो है वही बल से उस चद्रमा की रक्षा करता है । यहा बुध शब्द पण्डित के अर्थ मे सम्बोधन है, ग्रहवाची कदापि नहीं है । बुध शब्द को ग्रहार्थ में ले जाने से जो जो अर्थ होते है वे सब बनावट है । इति

स० १९३७ वैशाख शुक्ल ५

ऊचे ह्वै गुरु बुध कवी मिलि लरि होत विरूप ।
करत समागम सबहि सो, यह द्विजराज अनूप ॥

आप का
प० सुधाकर ।

( अहो ! चन्द्र पूरन भए फिर से पढता है )

( नेपथ्य मे )

हैं ! मेरे अति चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र० ।—( सुन कर ) जाना ।

अरे अहै कौटिल्य

नटी ।—( डर नाट्य करती है )

सूत्र० ।— दुष्ट टेढ़ी मतिवारो ।

नन्दवंश जिन सहजहि निज क्रोधानल जारो ॥
चन्द्रग्रहण को नाम सुनत निज नृप को मानी ।
इनही आवत चन्द्रगुप्त पै कछु भय जानी ॥ ८ ॥ १०
तो अब चलो हम लोग चलैं ।

( दोनों जाते हैं )

इति प्रस्तावना ।

—.*.—

# प्रथम अंक।

स्थान—चाणक्य का घर।

( अपनी खुली शिखा को हाथ से फटकारता हुआ चाणक्य आता है )

[चाण]क्य।—बता! कौन है जो मेरे जीते चन्द्रगुप्त को बल से ग्रसना चाहता है?

सदा दन्ति के कुम्भ को जो बिदारै।
ललाई नए चन्द सी जौन धारै॥
जभाई समै काल सो जौन बाढै।
भलो सिंह को दांत सो कौन काढै॥ ९॥

और भी

काल सर्पिणी नन्द कुल, क्रोध धूम सी जौन।
अब हूं बांधन देत नहिं, अहो शिखा मम कौन॥ १०॥
दहन नन्दकुल बन सहज, अति प्रज्वलित प्रताप।
को मम क्रोधानल पतंग, भयो चहत अब पाप॥ ११॥

शारंगरव! शारंगरव!!

( शिष्य आता है )

शिष्य।—गुरु जी! क्या आज्ञा है?

चाणक्य।—बेटा! मैं बैठना चाहता हूं।

शिष्य।—महाराज! इस दालान में बेंत की चटाई पहिले ही से बिछी है, आप बिराजिये।

चाणक्य।—बेटा! केवल कार्य्य में तत्परता मुझे व्याकुल करती है न कि और उपाध्यायों के तुल्य शिष्य जन से

दुःशीलता * ( बैठ कर आप ही आप ) क्या सब लोग यह बात जान गए कि मेरे × नन्दवश के नाश से क्रुद्ध हो कर राक्षस, पितावध से दुखी मलयकेतु + से मिल कर यवनराज की सहायता ले कर चन्द्रगुप्त पर चढाई किया चाहता है। ( कुछ सोच कर ) क्या हुआ, जब मैं नन्दवश की बड़ी प्रतिज्ञा रूपी नदी से पार उतर चुका, तब यह बात प्रकाश होने ही से क्या मै इस को न पूरी कर सकूगा ? क्यों कि— ५

दिसि सरिस रिपु रमनी बदन शशि शोक कारिख लाय कै।
लै नीति पवनहि सचिव बिटपन छार डारि जराय कै॥
बिनु पुर निवासी पच्छिगन नृप बंसमूल नसाय कै। १०
भो शांति मम क्रोधाग्नि यह कछु दहन हित नहि पाय कै – ॥१२॥

और भी

जिन जनन ने अति सोच सों नृप भय प्रगट धिक नहि कह्यौ।
पै मम अनादर को अतिहि वह सोच जिय जिन के रह्यौ =॥
ते लखहि आसन सों गिरायो नन्द सहित समाज कों। १५
जिमि शिखर तें वनराज क्रोधि गिरावई गजराज कों॥ १३॥

सो यद्यपि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूं, तौ भी चन्द्रगुप्त के हेतु शस्त्र अब भी धारण करता हूं। देखो मैंने—

नवनन्दन कौ मूल सहित खोद्यो छन भर में।
चन्द्रगुप्त मैं श्री राखी नलिनी जिमि सर मैं॥ २०
क्रोध प्रीति सो एक नासि कै एक बसायो।
शत्रु मित्र को प्रगट सबन फल लै दिखलायो॥

---

* अर्थात कुछ तुम लोगो पर दुष्टता मे नहीं अपने काम की घनटाघट से बिछी हुई चटाई नहीं रखी।

× नन्दवश अर्थात नवा नद, एक नन्द और उस क आठ पुत्र।

+ पर्वतेश्वर राजा का पुत्र।

– अग्नि बिना आधार नहीं जलती।

= नद ने कुरूप होन क कारण चाणक्य को अपने श्राद्ध से निकाल दिया था।

अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नन्दों के मारने से क्या और चन्द्रगुप्त को राज्य मिलने से ही क्या? (कुछ सोचकर) अहा! राक्षस की नन्दवंश में कैसी दृढ़ भक्ति है! जब तक नन्दवंश का कोई भी जीता रहेगा तब तक
५ वह कभी शूद्र का मन्त्री बनना स्वीकार न करेगा, इस से उस के पकड़ने में हम लोगों को निरुद्यम रहना अच्छा नहीं। यही समझ कर तो नन्दवंश का सर्वार्थसिद्धि बिचारा तपोवन में चला गया तौ भी हमने मार डाला। देखो, राक्षस मलय केतु को मिला कर हमारे बिगाड़ने में यत्न करता ही जाता है
१० (आकाश में देख कर) वाह राक्षस मन्त्री वाह! क्यों न हो! वाह मन्त्रियों में वृहस्पति के समान वाह! तू धन्य है, क्योंकि—

जब लों रहै सुख राज को तब लों सबै सेवा करै।
पुनि राज बिगड़े कौन स्वामी तनिक नहि चित पै धरै॥
१५ जे बिपतिहू में पालि पूरब प्रीति काज सवारहीं।
ते धन्य नर तुम सारिखे दुरलभ अहैं संसय नहीं॥

इसी से तो हम लोग इतना यत्न करके तुम्हें मिलाया चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चन्द्रगुप्त के मन्त्री बनो, क्योंकि—

२० मूरख कातर स्वामिभक्ति कछु काम न आवै।
पण्डित हू बिन भक्ति काज कछु नाहि बनावै॥
निज स्वारथ की प्रीति करैं ते सब जिमि नारी।
बुद्धि भक्ति दोउ होय तबै सेवक सुखकारी॥

सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूं, यथाशक्ति
२५ उसी के मिलाने का यत्न करता रहता हूं। देखो, पर्व्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्योंकि सब जानते हैं कि चन्द्रगुप्त और पर्व्वतक मेरे मित्र हैं तो मैं पर्व्वतक को मार

कर चन्द्रगुप्त का पक्ष निर्बल कर दूंगा ऐसी शंका कोई न करैगा सब यही कहैंगे कि राक्षस ने विषकन्या-प्रयोग करके चाणक्य के मित्र पर्वतक को मार डाला। पर एकान्त में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया है कि तेरे पिता को मैं ने नहीं मारा चाणक्य ही ने मारा, इस से मलयकेतु मुझ से बिगड़ रहा है। जो हो, यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तो भी पकड़ जायगा। पर जो हम मलयकेतु को पकड़ेंगे तो लोग निश्चय करलेंगे कि अवश्य चाणक्य ही ने अपने मित्र इस के पिता को मारा और अब मित्रपुत्र अर्थात् मलयकेतु को मारना चाहता है। और भी, अनेक देश की भाषा पहिरावा चाल व्यवहार जाननेवाले अनेक वेषधारी बहुत से दूत मैं ने इसी हेतु चारो ओर भेज रक्खे हैं कि वे भेद लेते रहैं कि कौन हम लोगों से शत्रुता रखता है, कौन मित्र है। और कुसुमपुर निवासी नन्द के मन्त्री और सम्बन्धियों के ठीक ठीक वृत्तान्त का अन्वेषण हो रहा है, वैसे ही भद्रभटादिकों को बड़े बड़े पद देकर चन्द्रगुप्त के पास रख दिया है और भक्ति की परीक्षा लेकर बहुत से अप्रमादी पुरुष भी शत्रु से रक्षा करने को नियत कर दिए हैं। वैसे ही मेरा सहपाठी मित्र विष्णुशर्म्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्रनीति और चौसठों कला से ज्योतिषशास्त्र में बड़ा प्रवीण है, उसे मैं ने पहिले ही योगी बना कर नन्दवध की प्रतिज्ञा के अनन्तर ही कुसुमपुर में भेज दिया है, वह वहां नन्द के मन्त्रियों से मित्रता करके, विशेष कर के राक्षस का अपने पर बड़ा विश्वास बढ़ा कर सब काम सिद्ध करैगा, इस से मेरा सब काम बन गया है परन्तु चन्द्रगुप्त सब राज्य का भार मेरे ही ऊपर रख कर सुख करता है। सच है, जो अपने बल बिना और अनेक दुःखों के भोगे बिना राज्य मिलता है वही सुख देता है। क्योंकि—

अपने बल सों लावहीं, यद्यपि मारि सिकार।
तदपि सुखी नहि होत है, राजा सिंह-कुमार ॥१६॥

( * यम का चित्र हाथ मे लिये योगी का वेष धारण किये दूत आता है। )

५ दूत।—अरे, और देव को काम नहि, जम को करो प्रनाम।
जो दूजन के भक्त को, प्रान हरत परिनाम ॥ १७ ॥

और

उलटे ते हू बनत है, काज किये अति हेत।
जो जम जो सब को हरत, सोई जीविका देत ॥ १८॥

१० तो इस घर मे चल कर जमपट दिखाकर गावै।

( घूमता है )

शिष्य।—रावल जी! ड्योढी के भीतर न जाना।

दूत।— अरे ब्राह्मण। यह किस का घर है?

शिष्य।—हम लोगों के परम प्रसिद्ध गुरु चाणक्य जी का।

१५ दूत।—( हँस कर ) अरे ब्राह्मण, तब तो यह मेरे गुरुभाई ही का घर है, मुझे भीतर जाने दे, मै उस को धर्मोपदेश करूंगा।

शिष्य।—( क्रोध से ) छि मूर्ख! क्या तू गुरुजी से भी धर्म्म विशेष जानता है?

२० दूत।—अरे ब्राह्मण! क्रोध मत कर, सभी सब कुछ नही जानते, कुछ तेरा गुरु जानता है, कुछ मेरे से लोग जानते है।

शिष्य।—(क्रोध से ) मूर्ख! क्या तेरे कहने से गुरु जी की सर्वज्ञता उड़ जायगी?

दूत।—भला ब्राह्मण! जो तेरा गुरु सब जानता है तो बतलावे
२५ कि चन्द्र किस को नही अच्छा लगता?

---

* उस काल में एक चाल के फकीर जम का चित्र दिखला कर संसार की अनित्यता के गीत गाकर भीख मांगते थे।

शिष्य।—मूर्ख! इस को जानने से गुरु को क्या काम?

दूत।—यही तो कहता हूं कि यह तेरा गुरु ही समझेगा कि इसके जानने से क्या होता है? तू तो सूधा मनुष्य है तू केवल इतना ही जानता है कि कमल को चन्द्र प्यारा नहीं है। देख— ५

जद्यपि होत सुन्दर कमल, उलटो तदपि सुभाव।
जो नित पूरन चन्द सों, करत बिरोध बनाव॥

चाणक्य।—(सुन कर आपही आप) अहा! "मैं चन्द्रगुप्त के बैरियों को जानता हूं" यह कोई गूढ़ वचन से कहता है।

शिष्य।—चल मूर्ख! क्या बेठिकाने की बकवाद कर रहा है। १०

दूत।—अरे ब्राह्मण! यह सब ठिकाने की बातें होंगी।

शिष्य।—कैसे होंगी?

दूत।—जो कोई सुननेवाला और समझनेवाला होय।

चाणक्य।—रावल जी! बेखटके चले आइये, यहां आपको सुनने और समझनेवाले मिलेंगे। १५

दूत।—आया (आगे बढ़ कर) जय हो महाराज की।

चाणक्य।—(देख कर आप ही आप) कामों की भीड़ से यह नहीं निश्चय होता कि निपुणक को किस बात के जानने के लिये भेजा था। अरे जाना, इसे लोगों के जी का भेद लेने को भेजा था (प्रकाश) आओ, आओ, कहो, २० अच्छे हो? बैठो।

दूत।—जो आज्ञा (भूमि में बैठता है)।

चाणक्य।—कहो, जिस काम को गए थे उसका क्या किया? चन्द्रगुप्त को लोग चाहते हैं कि नहीं?

दूत।—महाराज! आप ने पहिले ही से ऐसा प्रबन्ध किया है २५ कि कोई चन्द्रगुप्त से बिराग न करै, इस हेतु सारी प्रजा महाराज चन्द्रगुप्त में अनुरक्त है, पर राक्षस मन्त्री के दृढ़ मित्र तीन ऐसे हैं जो चन्द्रगुप्त की वृद्धि नहीं सह सकते।

चाणक्य।—( क्रोध से ) अरे! कह, कौन अपना जीवन नहीं सह सकते, उन के नाम तू जानता है?

दूत।—जो नाम न जानता तो आप के सामने क्योंकर निवेदन करता?

चाणक्य।- मैं सुना चाहता हूं कि उन के क्या नाम हैं?

दूत।—महाराज सुनिये। पहिले तो शत्रु का पक्षपात करने वाला क्षपणक है।

चाणक्य।—(हर्ष से आप ही आप ) हमारे शत्रुओं का पक्षपाती क्षपणक है? ( प्रकाश ) उस का नाम क्या है?

दूत।—जीवसिद्धि नाम है।

चाणक्य।—तू ने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे शत्रुओं का पक्षपाती है?

दूत।—क्योंकि उस ने राक्षस मन्त्री के कहने से देव पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग किया।

चाणक्य।—( आप ही आप ) जीवसिद्धि तो हमारा गुप्त दूत है ( प्रकाश ) हां, और कौन है।

दूत।—महाराज! दूसरा राक्षस मन्त्री का प्यारा सखा शकटदास कायथ है।

चाणक्य।—( हँस कर आप ही आप ) कायथ कोई बड़ी बात नहीं है तो भी क्षुद्र शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, इसी हेतु तो मैंने सिद्धार्थक को उस का मित्र बना कर उस के पास रक्खा है, ( प्रकाश ) हां, तीसरा कौन है?

दूत।—( हँस कर ) तीसरा तो राक्षस मन्त्री का मानो हृदय ही पुष्पपुरवासी चन्दनदास नामक वह बड़ा जौहरी है जिस के घर में मन्त्री राक्षस अपना कुटुम्ब छोड़ गया है।

चाणक्य।—(आप ही आप) अरे! यह उस का बड़ा अन्तरंग मित्र होगा, क्योंकि पूरे विश्वास बिना राक्षस अपना

कुटुम्ब यों न छोड़ जाता (प्रकाश) भला, तूने यह कैसे जाना कि राक्षस मन्त्री वहा अपना कुटुम्ब छोड़ गया?

दूत।—महाराज! इस "मोहर" की अगूठी से आप को विश्वास होगा (अगूठी देता है)।

चाणक्य।—(अगूठी लेकर और उस मे राक्षस का नाम बांच कर प्रसन्न हो कर आप ही आप) अहा! मै समझता हूं कि राक्षस ही मेरे हाथ लगा (प्रकाश) भला, तुम ने यह अगूठी कैसे पाई? मुझ से सब वृत्तान्त तो कहो। ५

दूत।—सुनिये, जब मुझे आप ने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा तब मै ने यह सोचा कि बिना भेस बदले मै दूसरे के घर मे न घुसने पाऊगा इससे मै जोगी का भेस कर के जमराज का चित्र हाथ मे लिये फिरता फिरता चन्दनदास जौहरी के घर मे चला गया और वहा चित्र फैला कर गीत गाने लगा। १०

चाणक्य। हा तब? १५

दूत।—तब महाराज! कौतुक देखने को एक पाच बरस का बड़ा सुन्दर बालक एक परदे के आड से बाहर निकला, उस समय परदे के भीतर स्त्रियों मे बड़ा कलकल हुआ कि "लड़का कहा गया"। इतने मे एक स्त्री ने द्वार के बाहर मुख निकाल कर देखा और लड़के को झट पकड़ ले गई, पर पुरुष की उगली से स्त्री की उगली पतली होती है, इस से द्वार ही पर यह अगूठी गिर पड़ी, और मै उस पर राक्षस मन्त्री का नाम देख कर आप के पास उठा लाया। २०

चाणक्य।—वाह वाह! क्यो न हो, अच्छा जाओ, मैं ने सब सुन लिया! तुम्हे इस का फल शीघ्र ही मिलेगा। २५

दूत।—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य।—शारगरव! शारगरव!!

शिष्य ।—( आकर ) आज्ञा, गुरुजी ?

चाणक्य ।— बेटा ! कलम, दावात, कागज तो लाओ ।

शिष्य ।—जो आज्ञा, ( बाहर जाकर ले आता है ) गुरुजी ! ले आया ।

५　चाणक्य ।—(लेकर आप ही आप ) क्या लिखू ? इसी पत्र से राक्षस को जीतना है ।

( प्रतिहारी आता है )

प्रतिहारी ।—जय हो महाराज की, जय हो !

चाणक्य ।—(हर्ष से आप ही आप ) वाह वाह ! कैसा सगुन

१०　हुआ कि कार्य्यारम्भ ही में जय शब्द सुनाई पड़ा । ( प्रकाश ) कहो, शोणोत्तरा, क्यों आयी हो ?

प्र० ।—महाराज ! राजा चन्द्रगुप्त ने प्रणाम कहा है और पूछा है कि मैं पर्व्वतेश्वर की क्रिया किया चाहता हूं इस से आप की आज्ञा हो तो उन के पहिरे आभरणों को

१५　पण्डित ब्राह्मणों को दूं ।

चाणक्य ।—( हर्ष से आप ही आप ) वाह चन्द्रगुप्त वाह, क्यों न हो, मेरे जी की बात सोच कर सदेशा कहला भेजा है ( प्रकाश ) शोणोत्तरा ! चन्द्रगुप्त से कहो कि "वाह ! बेटा वाह ! क्यों न हो, बहुत अच्छा विचार किया ! तुम

२०　व्यवहार में बड़े ही चतुर हो, इस से जो सोचा है सो करो पर पर्व्वतेश्वर के पहिरे हुए आभरण गुणवान् ब्राह्मणों को देने चाहिए, इस से ब्राह्मण मैं चुन के भेजूंगा ।"

प्र० ।— जो आज्ञा महाराज ! ( जाता है ) ।

२५　चाणक्य ।—शारङ्गरव ! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कहो कि जाकर चन्द्रगुप्त से आभरण ले कर मुझ से मिलें ।

शिष्य।—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य।—(आप ही आप) पीछे तो यह लिखे पर पहिले क्या लिखै (सोच कर) अहा! दूतों के मुख से ज्ञात हुआ है कि उस म्लेच्छराज-सेना में से प्रधान पांच राजा परम भक्ति से राक्षस की सेवा करते हैं। ५

प्रथम चित्रवर्म्मा कुलूत को राजा भारी।
मलयदेशपति सिंहनाद दूजो बलधारी॥
तीजो पुसकरनयन अहै कश्मीर देश को।
सिन्धुसेन पुनि सिन्धु नृपति अति उग्र भेष को॥
मेघाक्ष पांचवों प्रबल अति, बहु हय जुत पारस नृपति। १०
अब चित्रगुप्त इन नाम कों मेटहि हम जब लिखहि हति* ॥

(कुछ सोच कर) अथवा न लिखूं अभी सब बात योंही रहैं (प्रकाश) शारंगरव २!

शिष्य।—(आकर) आज्ञा गुरुजी!

चाणक्य।—बेटा! वैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखैं तो १५ भी उनके अक्षर अच्छे नहीं होते, इस से सिद्धार्थक से कहो (कान में कहकर) कि वह शकटदास के पास जाकर यह सब बात यों लिखवाकर और "किसी का लिखा कुछ कोई आप ही बांचे" यह सरनामे पर नाम बिना लिखवा कर हमारे पास आवे और शकटदास से २० यह न कहे कि चाणक्य ने लिखवाया है।

शिष्य।—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य।—(आप ही आप) अहा! मलयकेतु को तो जीत लिया।

---

* अर्थात् अब जब हम इनका नाम लिखते हैं तो निश्चय ये सब मरेंगे। इस से अब चित्रगुप्त अपने खाते से इनका नाम काट दें, न ये जीते रहैंगे न चित्रगुप्त को लेखा रखना पड़ैगा।

( चिट्ठी लेकर सिद्धार्थक आता है )

सि० ।—जय हो महाराज की, जय हो, महाराज ! यह शकट दास के हाथ का लेख है ।

चाणक्य ।—( लेकर देखता है ) वाह कैसे सुन्दर अक्षर हैं ! ( पढ़ कर ) बेटा, इस पर यह मोहर कर दो ।

सि० ।—जो आज्ञा, ( मोहर करके ) महाराज, इस पर मोहर हो गई, अब और कहिये क्या आज्ञा है ।

चाणक्य ।—बेटा जी ! हम तुम्हें एक अपने निज के काम में भेजा चाहते हैं ।

सि० ।—( हर्ष से ) महाराज, यह तो आप की कृपा है, कहिये यह दास आप के कौन काम आ सकता है ?

चाणक्य ।—सुनो, पहिले जहां सूली दी जाती है वहां जाकर फांसी देनेवालों को दाहिनी आंख दबाकर समझा देना* और जब वे तेरी बात समझ कर डर से इधर उधर भाग जायं तब तुम शकटदास को लेकर राक्षस मन्त्री के पास चले जाना । वह अपने मित्र के प्राण बचाने से तुम पर बड़ा प्रसन्न होगा और तुम्हें पारितोषिक देगा, तुम उस को लेकर कुछ दिनों तक राक्षस ही के पास रहना और जब और भी लोग पहुंच जायं तब यह काम करना ( कान में समाचार कहता है ) ।

सि० ।—जो आज्ञा महाराज ।

चाणक्य ।—शारंगरव ! शारंगरव !!

शिष्य ।—( आकर ) आज्ञा गुरुजी !

चाणक्य ।—कालपाशिक और दण्डपाशिक से यह कह दो कि चन्द्रगुप्त आज्ञा करता है कि जीवसिद्धि क्षपणक ने

---

* चाण्डालों को पहले से समझा दिया था कि जो आदमी दाहिनी आंख दबावै उस को हमारा मनुष्य समझ कर तुम लोग चटपट हट जाना ।

राक्षस के कहने से विषकन्या का प्रयोग करके पर्वतेश्वर को मार डाला,यही दोष प्रसिद्ध कर के अपमानपूर्वक उस को नगर से निकाल दें।

शिष्य।- जो आज्ञा ( घूमता है )।

चाणक्य। बेटा ! ठहर—सुन, और वह जो शकटदास कायस्थ है वह राक्षस के कहने से नित्य हमलोगों की बुराई करता है, यही दोष प्रगट करके उस को सूली दे दे और उस के कुटुम्ब को कारागार में भेज दे। ५

शिष्य।—जो आज्ञा महाराज ! ( जाता है )।

चाणक्य।—( चिन्ता कर के आप ही आप ) हा ! क्या किसी भांति यह दुरात्मा राक्षस पकड़ा जायगा? १०

शि०।—महाराज ! लिया।

चाणक्य।—( हर्ष से आप ही आप ) अहा ! क्या राक्षस को ले लिया ? ( प्रकाश ) कहो, क्या पाया ?

सि०।—महाराज ! आप ने जो सदेशा कहा, वह मैं ने भली भांति समझ लिया, अब काम पूरा करने जाता हूं। १५

चाणक्य।—( मोहर और पत्र देकर ) सिद्धार्थक ! जा तेरा काम सिद्ध हो।

सि०।—जो आज्ञा ( प्रणाम करके जाता है )।

शिष्य।—( आकर ) गुरुजी, कालपाशिक दंडपाशिक आप से निवेदन करते हैं कि महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा पूर्ण करने जाते हैं। २०

चाणक्य।—अच्छा, बेटा ! मैं चन्दनदास जौहरी को देखा चाहता हूं।

शिष्य।—जो आज्ञा ( बाहर जाकर चन्दनदास को लेकर आता है ) इधर आइये सेठ जी ! २५

चन्दन०।—(आप ही आप) यह चाणक्य ऐसा निर्दय है कि यह जो एकाएक किसी को बुलावे तो लोग बिना अपराध

भी इस से डरते है, फिर कहा मै इस का नित्य का अप
राधी, इसी से मैंने धनसेनादिक तीन महाजनों से कह
दिया है कि दुष्ट चाणक्य जो मेरा घर लूट ले तो आश्चर्य
नही, इस से स्वामी राक्षस का कुटुम्ब और कही ले
५ जाओ, मेरी जो गति होनी है वह हो।

शिष्य।—इधर आइये साह जी।

चन्दन०।—आया ( दोनों घूमते हैं )।

चाणक्य।—( देख कर ) आइये साह जी! कहिये, अच्छे तो
है? बैठिये, यह आसन है।

१० चन्दन०।—( प्रणाम करके ) महाराज! आप नही जानते कि
अनुचित सत्कार अनादर से भी विशेष दुःख का कारण
होता है, इस से मै पृथ्वी ही पर बैठूगा।

चाणक्य।—वाह! आप ऐसा न कहिए, आप को तो हम
लोगों के साथ यह व्यवहार उचित ही है, इससे आप
१५ आसन ही पर बैठिये।

चन्दन०।—( आप ही आप ) कोई बात तो इस ने जानी
( प्रकाश ) जो आज्ञा ( बैठता है )।

चाणक्य।—कहिए साह जी! चन्दनदास जी! आप को
व्यापार मे लाभ तो होता है न?

२० चन्दन०।—महाराज, क्यों नही, आप की कृपा से सब बनज
व्यौपार अच्छी भाति चलता है।

चाणक्य।—कहिए साहजी? पुराने राजाओं के गुण चन्द्रगुप्त
के दोषों को देख कर कभी लोगों को स्मरण आते है?

चन्दन०।—(कान पर हाथ रख कर) राम! राम! शरद ऋतु
२५ के पूर्ण चन्द्रमा की भाति शोभित चन्द्रगुप्त को देख कर
कौन नही प्रसन्न होता?

चाणक्य।—जो प्रजा ऐसी प्रसन्न है तो राजा भी प्रजा से कुछ
अपना भला चाहते है।

चन्दन०।—महाराज! जो आज्ञा, मुझ से कौन और कितनी वस्तु चाहते हैं?

चाणक्य।—सुनिये साहजी! यह नन्द का राज * नहीं है, चन्द्रगुप्त का राज्य है, धन से प्रसन्न होनेवाला तो वह लालची नन्द ही था, चन्द्रगुप्त तो तुम्हारे ही भले से प्रसन्न होता है। ५

चन्दन०।—(हर्ष से) महाराज, यह तो आप की कृपा है।

चाणक्य।—पर यह तो मुझ से पूछिये कि वह भला किस प्रकार से होगा?

चन्दन०।—कृपा कर के कहिये। १०

चाणक्य।—सौ बात की एक बात यह है कि राजा के विरुद्ध कामों को छोड़ो।

चन्दन०।—महाराज! वह कौन अभागा है जिसे आप राज-विरोधी समझते हैं?

चाणक्य।—उस में पहिले तो तुम्हीं हो। १५

चन्दन०।—(कान पर हाथ रख कर) राम! राम! राम! भला तिनके से और अग्नि से कैसा विरोध?

चाणक्य।—विरोध यही है कि तुम ने राजा के शत्रु राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब अब तक घर में रख छोड़ा है।

चन्दन०।—महाराज! यह किसी दुष्ट ने आप से झूठ कह दिया है। २०

चाणक्य।—सेठ जी! डरो मत, राजा के भय से पुराने राजा के सेवक लोग अपने मित्रों के पास बिना चाहे भी कुटुम्ब छोड़ कर भाग जाते हैं, इस से इस के छिपाने ही में दोष होगा। २५

---

* यहां तुच्छता प्रगट करने के लिये 'राज्य' का अपभ्रंश "राज" लिखा गया है। रा० र० वि० सिंह।

चन्दन०।—महाराज ! ठीक है, पहिले मेरे घर पर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब था।

चाणक्य।—पहिले तो कहा कि किसी ने झूठ कहा है। अब कहते हो था यह गबड़े की बात कैसी ?

५ चन्दन०।—महाराज ! इतना ही मुझसे बातों में फेर पड गया।

चाणक्य। सुनो, चन्द्रगुप्त के राज्य में छल का विचार नहीं होता, इस से राक्षस का कुटुम्ब दो, तो तुम सच्चे हो जाओगे।

चन्दन०।—महाराज ! मैं कहता हूँ न, पहिले राक्षस का
१० कुटुम्ब था।

चाणक्य।—तो अब कहा गया ?

चन्दन०।—न जाने कहा गया।

चाणक्य।—( हँसकर ) सुनो सेठजी ! तुम क्या नहीं जानते कि साप तो सिर पर औषधि पहाड पर। और जैसा चाण-
१५ क्य ने नन्द को ( इतना कह कर लाज से चुप रह जाता है )।

चन्दन०।—( आप ही आप )

प्रिया दूर घन गरजही, अहो दुःख अतिघोर।
औषधि दूर हिमाद्रि पै, सिर पै सर्प कठोर॥

२० चाणक्य।—चन्द्रगुप्त को अब राक्षस मन्त्री राज पर से उठा-
देगा यह आशा छोड़ो, क्योंकि देखो—

नृप नन्द जीवत नीतिबल सों, मति रही जिन की भली।
ते "वक्रनासादिक" सचिव नहि, थिर सके करि न सि चली॥
सो श्री सिमिटि अब आय लिपटी, चन्द्रगुप्त नरेस सों॥
२५ तेहि दूर को करि सकै चादनि, छुटत कहु राकेस सों ?॥

और भी

"सदा दन्ति के कुम्भ को" इत्यादि फिर से पढता है।

चन्दन०।—(आप ही आप) अब तुझ को सब कहना फबता है।

(नेपथ्य में) हटो हटो—

चाणक्य।—शारंगरव! यह क्या कोलाहल है देख तो?

शि०।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर) महाराज, राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा से राजद्वेषी जीवसिद्धि क्षपणक निरादरपूर्वक नगर से निकाला जाता है।

चाणक्य।—क्षपणक! हा! हा! अथवा राजविरोध का फल भोगै। सुनो चन्दनदास! देखो, राजा अपने द्वेपियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है, मैं तुम्हारे भले की कहता हूं, सुनो, और राक्षस का कुटुम्ब देकर जन्म भर राजा की कृपा से सुख भोगो।

चन्दन०।—महाराज! मेरे घर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब नहीं है।

(नेपथ्य में कलकल होता है)

चाणक्य।—शारङ्गरव! देख तो यह क्या कलकल होता है?

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज! राजा की आज्ञा से राजद्वेषी शकटदास कायस्थ को सूली देने ले जाते हैं।

चाणक्य।—राजविरोध का फल भोगै। देखो, सेठ जी! राजा अपने विरोधियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है, इस से राक्षस का कुटुम्ब छिपाना वह कभी न सहैगा, इसी से उस का कुटुम्ब देकर तुम को अपना प्राण और कुटुम्ब बचाना हो तो बचाओ।

चन्दन०।—महाराज! क्या आप मुझे डर दिखाते हैं, मेरे यहा अमात्य राक्षस का कुटुम्ब हई नही है, पर जो होता तो भी मैं न देता।

चाणक्य।—क्या चन्दनदास! तुम ने यही निश्चय किया है?

चन्दन०।—हां! मैंने यही दृढ़ निश्चय किया है।

चाणक्य।—(आप ही आप) वाह चन्दनदास! वाह, क्यों न हो!

दूजे के हित प्राण दे, करै धर्म प्रतिपाल।

को ऐसो शिवि के बिना, दूजो है या काल॥

(प्रकाश) क्या चन्दनदास, तुमने यही निश्चय किया है?

चन्दन०।—हां! हां! मैंने यही निश्चय किया है।

चाणक्य।—(क्रोध से) दुरात्मा दुष्ट बनिया! देख राजकोप का कैसा फल पाता है!

चन्दन०।—(बांह फैलाकर) मैं प्रस्तुत हूं, आप जो चाहिए अभी दण्ड दीजिए।

चाणक्य।—(क्रोध से) शारङ्गरव! कालपाशिक, दण्डपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दण्ड दें। नहीं, ठहरो, दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इस के घर का सारा धन ले लें और इसको कुटुम्ब समेत पकड़ कर बांध रक्खें, तब तक मैं चन्द्रगुप्त से कहूं, वह आप ही इस के सर्वस्व और प्राणहरण की आज्ञा देगा।

शिष्य।—जो आज्ञा महाराज। सेठ जी इधर आइये।

चन्दन०।—लीजिए महाराज! यह मैं चला (उठकर चलता है) (आप ही आप) अहा! मैं धन्य हूं कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, अपने हेतु तो सभी मरते हैं।

(दोनों बाहर जाते हैं)

चाणक्य।—(हर्ष से) अब ले लिया है राक्षस को, क्योंकि

जिमि इन तृन सम प्रान तजि, कियो मित्र का त्रान।

तिमि सोहू निज मित्र अरु, कुल रखि है दै प्रान॥

(नेपथ्य में कलकल)

चाणक्य ।—शारङ्गरव !

शिष्य ।—( आकर ) आज्ञा गुरु जी !

चाणक्य ।—देख तो यह कैसी भीड़ है ।

शिष्य ।—( बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर ) महाराज ! शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया । ५

चाणक्य ।— ( आप ही आप ) वाह सिद्धार्थक ! काम का आरम्भ तो किया ( प्रकाश ) हैं क्या ले गया ? ( क्रोध से ) बेटा ! दौड़ कर भागुरायण से कहो कि उस को पकड़े । १०

शिष्य ।—( बाहर जाकर आता है ) ( विषाद से ) गुरुजी ! भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है ।

चाणक्य ।—( आप ही आप ) निज काज साधने के लिये जाय ( क्रोध से प्रकाश ) भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा से कहो कि दुष्ट भागुरायण को पकड़े । १५

शिष्य ।—जो आज्ञा ( बाहर जाकर फिर आकर विषाद से ) महाराज ! बड़े दुःख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा हलचल हो रहा है । भद्रभट इत्यादि तो सब पिछली ही रात भाग गये । २०

चाणक्य ।—( आप ही आप ) सब काम सिद्ध करै ( प्रकाश ) बेटा, सोच मत करो ।

जे बात कछु जिय धारि भागे भले सुख सों भागहीं ।
जे रहे तेहू जाहि तिन को, सोच मोहि जिय कछु नहीं ॥
सत सैन हूं सों अधिक साधिनि, काज की जेहि जग कहै । २५
सो नन्दकुल की खननहारी, बुद्धि नित मो मैं रहै ॥

चाणक्य।—क्या चन्दनदास! तुम ने यही निश्चय किया है?
चन्दन०।—हां! मैंने यही दृढ़ निश्चय किया है।
चाणक्य।—(आप ही आप) वाह चन्दनदास! वाह, क्यों न हो!

दूजे के हित प्राण दै, करे धर्म प्रतिपाल।
को ऐसो शिवि के बिना, दूजो है या काल॥

(प्रकाश) क्या चन्दनदास, तुमने यही निश्चय किया है?
चन्दन०।—हां! हां! मैंने यही निश्चय किया है।
चाणक्य।—(क्रोध से) दुरात्मा दुष्ट बनिया! देख राजकोप का कैसा फल पाता है!
चन्दन०।—(बांह फैलाकर) मैं प्रस्तुत हूं, आप जो चाहिए अभी दण्ड दीजिए।
चाणक्य।—(क्रोध से) शारङ्गरव! कालपाशिक, दण्डपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दण्ड दें। नहीं, ठहरो, दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इस के घर का सारा धन ले लें और इसको कुटुम्ब समेत पकड़ कर बांध रक्खें, तब तक मैं चन्द्रगुप्त से कहूं, वह आप ही इस के सर्वस्व और प्राणहरण की आज्ञा देगा।
शिष्य।—जो आज्ञा महाराज। सेठ जी इधर आइये।
चन्दन०।—लीजिए महाराज! यह मैं चला (उठकर चलता है) (आप ही आप) अहा! मैं धन्य हूं कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं अपने हेतु तो सभी मरते हैं।

(दोनों बाहर जाते हैं)

चाणक्य।—(हर्ष से) अब ले लिया है राक्षस को, क्योंकि

जिमि इन तृन सम प्रान तजि, कियो मित्र का त्रान।
तिमि सोहू निज मित्र अरु, कुल रखि है दै प्रान॥

(नेपथ्य में कलकल)

चाणक्य।—शारङ्गरव!

शिष्य।—(आकर) आज्ञा गुरु जी!

चाणक्य।—देख तो यह कैसी भीड़ है।

शिष्य।—(बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर) महाराज! शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया। ५

चाणक्य।—(आप ही आप) वाह सिद्धार्थक! काम का आरम्भ तो किया (प्रकाश) हैं क्या ले गया? (क्रोध से) बेटा! दौड़ कर भागुरायण से कहो कि उस को पकड़े। १०

शिष्य।—(बाहर जाकर आता है) (विषाद से) गुरुजी! भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है।

चाणक्य।—(आप ही आप) निज काज साधने के लिये जाय (क्रोध से प्रकाश) भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा से कहो कि दुष्ट भागुरायण को पकड़े। १५

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर विषाद से) महाराज! बड़े दुःख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा हलचल हो रहा है। भद्रभट इत्यादि तो सब पिछली ही रात भाग गये। २०

चाणक्य।—(आप ही आप) सब काम सिद्ध करै (प्रकाश) बेटा, सोच मत करो।

जे बात कछु जिय धारि भागे भले सुख सों भागहीं।
जे रहे तेहु जाहि तिन को, सोच मोहि जिय कछु नहीं॥
सत सैन हूं सो अधिक साधिनि, काज की जेहि जग कहै। २५
सो नन्दकुल की खननहारी, बुद्धि नित मो मैं रहै॥

(उठ कर और आकाश की ओर देख कर) अभी भद्रभटादिकों को पकड़ता हूं (आप ही आप) राक्षस! अब मुझ से भाग के कहां जायगा, देख—

एकाकी मदगलित गज, जिमि नर लावहिं बाधि।
५ चन्द्रगुप्त के काज में, तिमि तोहि धरिहै साधि॥

(सब जाते हैं)—(जवनिका गिरती है)

इति प्रथमांक

# द्वितीय अंक।

## स्थान—राजपथ

(मदारी आता है)

मदारी।—अललललललल, नाग लाये सांप लाये!

तन्त्र युक्ति सब जानही, मण्डल रचहि विचार।
मन्त्र रछही ते करहि, अहि नृप को उपचार॥ ५

(* आकाश मे देख कर) महाराज! क्या कहा? तू कौन है? महाराज! मै जीर्णविष नाम सेरा हूं (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा कि मै भी साप का मन्त्र जानता हूं खेलूगा? तो आप काम क्या करते है, यह तो कहिये? १० (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा—मै राजसेवक हूं? यो आप तो साप के साथ खेलते ही है। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा, कैसे? मन्त्र और जड़ी बिन मदारी और आकुस बिन मतवाले हाथी का हाथीवान, वैसे ही नये अधिकार के सङ्ग्रामविजयी राजा के सेवक—ये तीनों १५ अवश्य नष्ट होते है (ऊपर देख कर) यह देखते २ कहा चला गया? (फिर ऊपर देख कर) क्या महाराज! पूछते हो कि इन पिटारियों मे क्या है? इन पिटारियों मे मेरी जीविका के सर्प है। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा कि मै देखूगा? वाह वाह महाराज! देखिये देखिये, मेरी बोहनी हुई, २० कहिये इसी स्थान पर खोलूं? परन्तु यह स्थान अच्छा नही

* आकाश में देख कर' या 'ऊपर देख कर' का आशय यह है मानो दूसरे से बात करता है।

है, यदि आप को देखने की इच्छा हो तो आप इस स्थान में आइये मैं दिखाऊं (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा कि यह स्वामी राक्षस मन्त्री का घर है, इस में मैं घुसने न पाऊंगा, तो आप जायं, महाराज! मैं तो अपनी जीविका के
५ प्रभाव से सभी के घर जाता आता हूं। अरे क्या वह गया (चारो ओर देख कर) अहा, बड़े आश्चर्य की बात है, जब मैं चाणक्य की रक्षा में चन्द्रगुप्त को देखता हूं तब समझता हूं कि चन्द्रगुप्त ही राज्य करैगा, पर जब राक्षस की रक्षा में मलयकेतु को देखता हूं तब चन्द्रगुप्त का राज गया सा दिखाई देता है।
१० क्योंकि—

चाणक्य ने लै जदपि बाधी बुद्धिरूपी डोर सों।
करि अचल लक्ष्मी मौर्य्यकुल मैं नीति के निज जोर सों।
पै तदपि राक्षस चातुरी करि हाथ मे ताको करै।
गहि ताहि खींचत आपुनी दिसि मोहि यह जानी परै।

१५ सो इन दोनो परम नीतिचतुर मन्त्रियों के विरोध में नन्दकुल की लक्ष्मी संशय में पड़ी है

दोऊ सचिव विरोध सों, जिमि बन जुग गजराय।
हथिनी सी लक्ष्मी बिचल, इत उत झोंका खाय॥

तो चलूं अब मन्त्री राक्षस से मिलूं।

२० (जवनिका उठती है और आसन पर बैठा राक्षस और पास प्रियम्बदक नामक सेवक दिखाई देते हैं)

राक्षस।—(ऊपर देखकर आंखों में आंसू भरकर) हा! बड़े कष्ट की बात है—

गुन नीति बलसों जीति अरि, जिमि आपु जादवगन हयो।
२५ तिमि नन्द को यह बिपुल कुल, बिधि बाम सों सब नासि गयो॥
एहि सोच मैं मोहि दिवस अरु निसि, नित्य जागत बीतही।
यह लखौ चित्र बिचित्र मेरे भाग के बिनु भीतही॥

अथवा

बिनु भक्तिभूले, बिनहि स्वारथ हेतु, हम यह पन लियो।
बिनु प्राण के भय, बिनु प्रतिष्ठा लाभ, सब अबलौ कियो॥
सब छोड़ि कै परदासता एहि हेत नित प्रति हम करै।
जो स्वर्ग मैं हूं स्वामि मम निज शत्रु हत लखि सुख भरै॥ ५
(आकाश की ओर देख कर दुःख से) हा! भगवती लक्ष्मी!
तू बड़ी अगुणज्ञा है क्योंकि—

निज तुच्छ सुख के हेतु तजि, गुणरासि नन्द नृपाल कों।
अब शूद्र मै अनुरक्त ह्वै लपटी सुधा मनु व्याल कों॥
ज्यों मत्त गज के मरत मद की धार ता साथहि नसै। १०
त्यों नन्द के साथहि नसी किन निलज अजहूं जग बसै॥
अरे पापिन!

का जग मै कुलवन्त नृप, जीवत रह्यो न कोय?
जो तू लपटी शूद्र सों, नीच गामिनी होय॥

अथवा १५

बारबधू जन को अहै, सहजहि चपल सुभाव।
तजि कुलीन गुनियन करहि, ओछे जन सो चाव॥

तो हम भी अब तेरा आधार ही नाश किए देते हैं (कुछ सोचकर) हम मित्रवर चन्दनदास के घर अपना कुटुम्ब छोड़कर बाहर चले आए सो अच्छा ही किया। क्योंकि एक तो २० अभी कुसुमपुर को चाणक्य घेरा नही चाहता, दूसरे यहा के निवासी महाराज नन्द मे अनुरक्त है, इस से हमारे सब उद्योगों मे सहायक होते है। वहा भी विषादिक से चन्द्रगुप्त के नाश करने को और सब प्रकार से शत्रु का दाव घात व्यर्थ करने को बहुत सा धन देकर शकटदास को छोड़ ही दिया २५ है। प्रतिक्षण शत्रुओं का भेद लेने को और उन का उद्योग

नाश करने को भी जीवसिद्धि इत्यादि सुहृद नियुक्त ही है। सो अब तो—

विष वृक्ष, अहिसुत, सिंहपोत समान जो दुखरास को।
नृपनन्द निजसुत जानि पाल्यो, सकुल निज असु नाश को॥
५ तो चन्द्रगुप्तहि बुद्धि सर मम तुरत मारि गिराइहै।
जो दुष्ट दैव न कवच बनिकै असह आड़े आइहै॥

( कञ्चुकी आता है )

कञ्चुकी।—( आप ही आप )

नृपनन्द काम समान चानक नीति जरजर जर भयो।
१० पुनि धर्म्म सम पुर देह सों नृप चन्द्र क्रम सों बढ़ि लयो॥
अवकास लहि तेहि लोभ राक्षस जदपि जीतन जाइहै।
पै सिथिल बल ने नाहि कोउ बिधि चन्द्र पै जय पाइहै॥

(देखकर) यह मन्त्री राक्षस है ( आगे बढ कर ) मन्त्री! आप का कल्याण हो।

१५ राक्षस।—जाजलक! प्रणाम करता हू। अरे प्रियम्बदक! आसन ला।

प्रियम्बदक। (आसन ला कर) यह आसन है, आप बैठें।

कञ्चुकी।—(बैठकर) मन्त्री, कुमार मलयकेतु ने आप को यह कहा है कि "आप ने बहुत दिनों से अपने शरीर का सब
२० शृङ्गार छोड़ दिया है इस से मुझे बड़ा दुःख होता है। यद्यपि आप को अपने स्वामी के गुण नही भूलते और उन के वियोग के दुःख मे यह सब कुछ नही अच्छा लगता तथापि मेरे कहने से आप इन को पहिरें।" (आभरण दिखाता है) मन्त्री! ये आभरण कुमार ने अपने
२५ अग से उतार कर भेजे है, आप इन्हे धारण करें।

राक्षस।—जाजलक! कुमार से कह दो कि तुम्हारे गुणों के आगे मैं स्वामी के गुण भूल गया। पर—

इन दुष्ट बैरिन सों दुखी निज अंग, नाहिं सवारि हौं।
भूषन बसन सिंगार तब लौं, हौं न तन कछु धारिहौं॥
जब लौं न सब रिपु नासि, पाटलिपुत्र फेर बसाइहौं।
हे कुंवर! तुम को राज दै, सिर अचल छत्र फिराइहौं॥

कञ्चुकी।—अमात्य! आप जो न करो सो थोड़ा है, यह बात कौन कठिन है? पर कुमार की यह पहिली बिनती तो मानने ही के योग्य है। ५

राक्षस।—मुझे तो जैसी कुमार की आज्ञा माननीय है वैसी ही तुम्हारी भी, इस मे मुझे कुमार की आज्ञा मानने मे कोई विचार नही है। १०

कञ्चुकी।—(आभूषण पहिराता है) कल्याण हो महाराज! मेरा काम पूरा हुआ।

राक्षस।—मै प्रणाम करता हूं।

कञ्चुकी।—मुझ को जो आज्ञा हुई थी सो मै ने पूरी की (जाता है)। १५

राक्षस।—प्रियम्बदक! देख तो मेरे मिलने को द्वार पर कौन खड़ा है।

प्रियम्बदक।—जो आज्ञा (आगे बढ़कर सपेरे के पास आकर) आप कौन है?

सपेरा।—मै जीर्णविष नामक सपेरा हूं और राक्षस मन्त्री के साम्हने मै सांप खेलना चाहता हूं। मेरी यही जीविका है। २०

प्रियम्बदक।—तो ठहरो, हम अमात्य से निवेदन कर लें (राक्षस के पास जाकर) महाराज! एक सपेरा है, वह आप को अपना करतब दिखलाया चाहता है।

राक्षस।—(बाईं आंख का फड़कना दिखाकर, आप ही आप) है, आज पहिले ही सांप दिखाई पड़े (प्रकाश) प्रिय- २५

म्बद्क ! मेरा साप देखने को जी नहीं चाहता सो इसे कुछ देकर बिदा कर।

प्रियम्बद्क।—जो आज्ञा (सपेरे के पास जाकर) लो, मन्त्री तुम्हारा कौतुक बिना देखे ही तुम्हें यह देते हैं, जाओ।

५ सपेरा।—मेरी ओर से यह बिनती करो कि मैं केवल सपेरा ही नहीं हूं किन्तु भाषा का कवि भी हूं, इस से जो मन्त्री जी मेरी कविता मेरे मुख से न सुना चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ लें (एक पत्र देता है)।

प्रियम्बद्क।—(पत्र लेकर राक्षस के पास आकर) महाराज

१० वह सपेरा कहता है कि मैं केवल सपेरा ही नहीं हूं, भाषा का कवि भी हूं। इस से जो मन्त्री जी मेरी कविता मेरे मुख से सुनना न चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ लें (पत्र देता है)।

राक्षस।—(पत्र पढता है)

१५ सकल कुसुम रस पान करि, मधुप रसिक सिरताज।
जो मधु त्यागत ताहि लै, होत सबै जगकाज॥

(आप ही आप) अरे! —"मैं कुसुमपुर का वृत्तान्त जाननेवाला आप का दूत हूं" इस दोहे से यह ध्वनि निकलती है। अह! मैं तो कामों से ऐसा घबडा रहा हूं

२० कि अपने भेजे भेदिया लोगों को भी भूल गया। अब स्मरण आया, यह तो सपेरा बना हुआ विराधगुप्त कुसुमपुर से आया है (प्रकाश) प्रियम्बदक! इस को बुलाओ, यह सुकवि है, मैं भी इस की कविता सुना चाहता हूं।

२५ प्रियम्बद्क।—जो आज्ञा (सपेरे के पास जाकर) चलिए, मन्त्री जी आप को बुलाते हैं।

सपेरा।—(मन्त्री के साम्हने जाकर और देखकर आप ही आप) अरे यही मन्त्री राक्षस है! अहा!—

लो बाम बाहु लताहि रावत कण्ठ सौं खसि खसि परै ।
निमि धरे दच्छिन बाहु कोहू गोद मे बिचलो गिरै ॥
जा बुद्धि के डर होइ सकित नृप हृदय कुच नहि धरै ।
अजहूं न लक्ष्मी चन्द्रगुप्तहि गाढ़ आलिंगन करै ॥

प्रकाश ) मन्त्री की जय हो । ५

राक्षस ।—( देख कर ) अरे विराध —( सकोच से बात उड़ा- कर ) प्रियम्बदक ! मै जब तक सर्पों से अपना जी ब- लाता हू तब तक सब को लेकर तू बाहर ठहर ।

प्रियम्बदक ।—जो आज्ञा ।

( बाहर जाता है ) १०

राक्षस ।—मित्र विराधगुप्त ! इस आसन पर बैठो ।

विराधगुप्त ।—जो आज्ञा ( बैठता है ) ।

राक्षस ।—(खेद के सहित निहार कर) हा ! महाराज नन्द के आश्रित लोगों की यह अवस्था । ( रोता है )

विराधगुप्त ।—आप कुछ शोच न करै, भगवान की कृपा से शीघ्र ही वही अवस्था होगी । १५

राक्षस ।—मित्र विराधगुप्त ! कहो, कुसुमपुर का वृत्तान्त कहो ।

विराधगुप्त । महाराज ! कुसुमपुर का वृत्तान्त बहुत लम्बा चौड़ा है, इस से जहां से आज्ञा हो वहा से कहूं । २०

राक्षस । -मित्र ! चन्द्रगुप्त के नगर प्रवेश के पीछे मेरे भेजे हुए विष देनेवाले लोगों ने क्या क्या किया यह सुना चाहता हूं ।

विराधगुप्त ।—सुनिए—शक, यवन, किरात, काम्बोज पारस, वाह्लीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजों की सहायता से, चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर के बलरूपी समुद्र से कुसुम- पुर चारो ओर से घिरा हुआ है । २५

राक्षस ।—अहा मित्र ! देखो, कैसा आश्चर्य्य हुआ—

जो बिषमयी नृप चन्द्र बधहित नारी राखी लाय कै ।
तासों हत्यो पर्व्वत उलटि चाणक्य बुद्धि उपाइ कै ॥
जिमि करन शक्ति अमोघ अर्जुन हेतु धरी छिपाइ कै ।
पै कृष्ण के मत सो घटोत्कच पै परो घहराइ कै ॥ ५

विराधगुप्त ।—महाराज ! समय की सब उलटी गति है !—
क्या कीजियेगा ?

राक्षस ।—हा ! तब क्या हुआ ?

विराधगुप्त ।—तब पिता का बध सुनकर कुमार मलयकेतु नगर से निकल कर चले गये, और पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक पर उन लोगों ने अपना विश्वास जमा लिया तब उस दुष्ट चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का प्रवेशमुहूर्त प्रसिद्ध कर के नगर के सब बढ़ई और लोहारों को बुला कर एकत्र किया और उन से कहा कि महाराज के नन्दभवन मे गृहप्रवेश का मुहूर्त्त ज्योतिषियों ने आज ही आधी रात का दिया है, इससे बाहर से भीतर तक सब द्वारों को जाच लो , तब उस से बढ़ई लोहारों ने कहा कि "महाराज ! चन्द्रगुप्त का गृहप्रवेश जान कर दारुवर्म्म ने प्रथम द्वार तो पहले ही सोने की तोरनों से शोभित कर रखा है, भीतर के द्वारों को हम लोग ठीक करते है ।" यह सुन कर चाणक्य ने कहा कि बिना कहे ही दारुवर्म्म ने बड़ा काम किया इससे उसको चतुराई का पारितोषिक शीघ्र ही मिलैगा ।

राक्षस ।—( आश्चर्य से ) चाणक्य प्रसन्न हो यह कैसी बात है ? इससे दारुवर्म्म का यत्न या तो उलटा हो या निष्फल होगा, क्योंकि इस ने बुद्धि मोह से या राजभक्ति से बिना

समय ही चाणक्य के जी मे अनेक सन्देह और विकल्प उत्पन्न कराया। हा फिर?

विराधगुप्त।—फिर उस दुष्ट चाणक्य ने बुला कर सब को सहेज दिया कि आज आधी रात को प्रवेश होगा, और उसी समय पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक और चन्द्रगुप्त को एक आसन पर बिठा कर पृथ्वी का आधा २ भाग कर दिया।

राक्षस।—क्यों पर्व्वतेश्वर के भाई वरोधक को आधा राज मिला, यह पहिले ही उसने सुना दिया?

विराधगुप्त।—हा, तो इससे क्या हुआ?

राक्षस।—(आप ही आप) निश्चय यह ब्राह्मण बडा धूर्त्त है, कि इस ने उस सीधे तपस्वी से इधर-उधर की चार बात बना कर पर्व्वतेश्वर के मारने के अपयश निवारण के हेतु यह उपाय सोचा (प्रकाश) अच्छा कहो—तब?

विराधगुप्त।—तब यह तो उसने पहले ही प्रकाश कर दिया था कि आज रात को गृह प्रवेश होगा, फिर उसने वैरोधक को अभिषेक कराया और बडे बडे बहुमूल्य स्वच्छ मोतियों का उसको कवच पहिराया और अनेक रत्नों से जड़ा सुन्दर मुकुट उसके सिर पर रक्खा और गले मे अनेक सुगन्ध के फूलों की माला पहिराई, जिससे वह एक ऐसे बडे राजा की भाति हो गया कि जिन लोगों ने उसे सर्व्वदा देखा है वे भी न पहिचान सकैं, फिर उस दुष्ट चाणक्य की आज्ञा से लोगों ने चन्द्रगुप्त की चन्द्र लेखा नाम की हथिनी पर बिठा कर बहुत से मनुष्य साथ करके बडी शीघ्रता से नन्द मन्दिर में उसका प्रवेश कराया। जब वैरोधक मन्दिर मे घुसने लगा तब आप का भेजा दारुवर्म्म बढ़ई उसको चन्द्रगुप्त समझ कर उस

के ऊपर गिराने के अपनी कल की बनी तोरन ले कर सावधान हो बैठा। इसके पीछे चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजा सब बाहर खड़े रह गये और जिस बर्बर को आप ने चन्द्रगुप्त के मारने के हेतु भेजा था वह भी अपनी सोने की छड़ी की गुप्ती जिसमे एक छोटी कृपाण थी लेकर वहा खड़ा हो गया।

राक्षस।—दोनों ने बे ठिकाने काम किया, हा फिर ?

विराधगुप्त।—तब उस हथिनी को मार कर बढ़ाया और उस के दौड़ चलने से कल की तोरण का लक्ष, जो चन्द्रगुप्त के धोखे वैरोधक पर किया गया था, चूक गया १० और वहा बर्बर जो चन्द्रगुप्त का आसरा देखता था, वह बचारा उसी कल की तोरन से मारा गया। जब दारुवर्म्मा ने देखा कि लक्ष तो चूक गए, अब मारे जायहीगे तो उस ने उस कल के लोहे की कील से उस ऊचे तोरन के स्थान ही पर से चन्द्रगुप्त के धोखे तपस्वी १५ वैरोधक को हथिनी ही पर मार डाला।

राक्षस।—हाय! दोनों बात कैसे दुःख की हुई कि चन्द्रगुप्त तो काल से बच गया और दोनों बिचारे बर्बर और वैरोधक मारे गए; (आप ही आप) दैव ने इन दोन के नही मारा हम लोगों को मारा !! (प्रकाश) और वह २० दारुवर्म्म बढ़ई क्या हुआ ?

विराधगुप्त।—उस को वैरोधक के साथ के मनुष्यों ने मार डाला।

राक्षस।—हाय! बड़ा दुःख हुआ! हाय! प्यारे दारुवर्म्म का हम लोगों से वियोग हो गया। अच्छा! उस वैद्य २५ अभयदत्त ने क्या किया ?

विराधगुप्त।—महाराज! सब कुछ किया।

राक्षस।—(हर्ष से) क्या चन्द्रगुप्त मारा गया?

विराधगुप्त।—दैव ने न मरने दिया।

राक्षस।—(शोक से) तो क्या फूल कर कहते हो कि सब कुछ किया?

५ विराधगुप्त।—उस ने औषधि मे विष मिला कर चन्द्रगुप्त को दिया, पर चाणक्य ने उस को देख लिया और सोने के बरतन मे रख कर उस का रंग पलटा जान कर चन्द्रगुप्त से कह दिया कि इस औषधि में विष मिला है, इस को न पीना।

१० राक्षस।—अरे वह ब्राह्मण बड़ा ही दुष्ट है। हा, तो वह वैद्य क्या हुआ?

विराधगुप्त।—उस वैद्य को वही औषधि पिला कर मार डाला।

राक्षस।—(शोक से) हाय हाय! बड़ा गुणी मारा गया! १५ भला शयनघर के प्रबन्ध करनेवाले प्रमोदक ने क्या किया?

विराधगुप्त।—उस ने सब चौका लगाया।

राक्षस।—(घबड़ा कर) क्यौ?

विराधगुप्त।—उस मूर्ख को जो आप के यहा से व्यय को धन मिला सो उस ने अपना बडा ठाट बाट फैलाया, यह देखतेही २० चाणक्य चौकन्ना हो गया और उस से अनेक प्रश्न किए, जब उस ने उन प्रश्नों के उत्तर अण्डबण्ड दिये तो उस पर पूरा सन्देह कर के दुष्ट चाणक्य ने उस को बुरी चाल से मार डाला।

राक्षस।—हा! क्या दैव ने यहा भी उलटा हमी लोगों को २५ मारा! भला वह चन्द्रगुप्त को सोते समय मारने के हेतु जो राजभवन मे बीभत्सकादिक वीर सुरंग मे छिपा रक्खे थे उन का क्या हुआ?

विराधगुप्त।—महाराज! कुछ न पूछिये।

राक्षस।—(घबड़ाकर) क्यौं क्यौं! क्या चाणक्य ने जान लिया?

विराधगुप्त।—नहीं तो क्या?

राक्षस।—कैसे? ५

विराधगुप्त।—महाराज! चन्द्रगुप्त के सोने जाने के पहिले ही वह दुष्ट चाणक्य उस घर में गया और उस को चारो ओर से देखा तो भीतर की एक दरार से चिउटी लोग चावल के कने लाती है। यह देख कर उस दुष्ट ने निश्चय कर लिया कि इस घर के भीतर मनुष्य छिपे है, बस, १० यह निश्चय कर उस ने उस घर में आग लगवा दिया और धूआ से घबड़ा कर निकल तो सके ही नहीं, इस से वे बीभत्सकादिक वहीं भीतर ही जल कर राख हो गए।

राक्षस।—(सोच से) मित्र! देख, चन्द्रगुप्त का भाग्य कि १५ सब के सब मर गये। (चिन्ता सहित) अहा! सखा! देख इस दुष्ट चन्द्रगुप्त का भाग्य!!!

कन्या जो विष की गई, ताहि हतन के काज।
तासों मार्‌यौ पर्व्वतक, जाको आधो राज॥
सबै नसे कलबल सहित, जे पठये बध हेत। २०
उलटी मेरी नीति सब, मौर्य्यहि को फल देत॥

विराधगुप्त।—महाराज! तब भी उद्योग नहीं छोड़ना चाहिये—

प्रारम्भ ही नहि बिघ्न के भय अधम जन उद्यम सजें।
पुनि करहि तो कोउ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजें॥ २५
धरि लात विघ्न अनेक पे निरभय न उद्यम ते टरें।
जे पुरुष उत्तम अन्त मैं ते सिद्ध सब कारज करें॥

और भी—

का सेसहि नहि भार पै, धरती देत न डारि।
कहा दिवसमनि नहि थकत पै नहि रुकत बिचारि॥
सज्जन ताको हित करत, जेहि किय अंगीकार।
५ यहै नेम सुकृतीन को, निज जिय करहु विचार॥

राक्षस।—मित्र! यह क्या तू नही जानता कि मै प्रारब्ध के भरोसे नही हूं? हा, फिर।

विराधगुप्त।—तब से दुष्ट चाणक्य चन्द्रगुप्त की रक्षा मे चौकन्ना रहता है और इधर उधर के अनेक उपाय सोचा
१० करता है और पहिचान २ क नन्द के मन्त्रियों को पकडता है।

राक्षस।—(घबड़ा कर) हा! कहो तो, मित्र! उस ने किसे किसे पकडा है?

विराधगुप्त।—सब के पहिले तो जीवसिद्धि क्षपणक को
१५ निरादर कर के नगर से निकाल दिया।

राक्षस।—(आपही आप) भला, इतने तक तो कुछ चिन्ता नही क्योंकि वह योगी है उसका घर बिना जी न घबडायगा। (प्रकाश) मित्र! उस पर अपराध क्या ठहराया?

२० विराधगुप्त।—कि इसी दुष्ट ने राक्षस की भेजी विषकन्या से पर्व्वतेश्वर को मार डाला।

राक्षस।—(आपही आप) वाह रे कौटिल्य वाह! क्यौं न हो?

निज कलङ्क हम पै धर्‌यौ, हत्यौ अर्द्ध बटवार।
२५ नीतिबीज तुव एक ही, फल उपजवत हजार॥

(प्रकाश) हा, फिर?

विराधगुप्त।—फिर चन्द्रगुप्त के नाश को इस ने दारुवर्म्मा-

दिक नियत किये थे यह दोष लगा कर शकटदास को सूली दे दी।

राक्षस।—(दुख से) हा मित्र! शकटदास! तुम्हारी बड़ी अयोग्य मृत्यु हुई। अथवा स्वामी के हेतु तुम्हारे प्राण गए। इस से कुछ शोच नहीं है, शोच हमी लोगों का है कि स्वामी के मरने पर भी जीना चाहते है। ५

विराधगुप्त।—मन्त्री! ऐसा न सोचिये, आप स्वामी का काम कीजिये।

राक्षस।—मित्र।

केवल है यह सोक, जीव लोभ अब लौं बचे। १०
स्वामि गयो पर लोक, पै कृतघ्न इतही रहे॥

विराधगुप्त।—महाराज! ऐसा नहीं (केवल यह ऊपर का छन्द फिर से पढ़ता है) *।

राक्षस।—मित्र! कहो, और भी सैकड़ों मित्र का नाश सुनने का ये पापी कान उपस्थित है। १५

विराधगुप्त।—यह सब सुन कर चन्दनदास ने बड़े कष्ट से आप के कुटुम्ब को छिपाया।

राक्षस।—मित्र! उस दुष्ट चाणक्य के तो चन्दनदास ने विरुद्ध ही किया।

विराधगुप्त।—तो मित्र का बिगाड़ करना तो अनुचित ही था। २०

राक्षस।—हा, फिर क्या हुआ?

विराधगुप्त।—तब चाणक्य ने आप के कुटुम्ब को चन्दनदास से बहुत मांगा पर उस ने नहीं दिया, इस पर उस दुष्ट ब्राह्मण ने— २५

---

* अर्थात जो लोग जीवलोभ से बचे हैं, वे कृतघ्न हैं, आप तो स्वामी के कार्य्य साधन को जीते हैं, आप क्यों कृतघ्न हैं।

राक्षस ।—( घबड़ा कर ) क्या चन्दनदास को मार डाला?
विराधगुप्त ।—नहीं, मारा तो नहीं, पर स्त्री पुत्र धन समेत बाध कर बन्दी घर में भेज दिया।
राक्षस ।—तो क्या ऐसा सुखी हो कर कहते हो कि बन्धन मे भेज दिया? अरे! यह कहो कि मन्त्री राक्षस को
५ कुटुम्ब सहित बाध रक्खा है।

( प्रियम्बदक आता है। )

प्रियम्बदक ।—जय जय महाराज! बाहर शकटदास खड़े है।
राक्षस ।—( आश्चर्य से ) सच ही!
१० प्रियम्बदक ।—महाराज! आप के सेवक कभी मिथ्या बोलते हैं?
राक्षस ।—मित्र विराधगुप्त! यह क्या?
विराधगुप्त ।—महाराज! होनहार जो बचाया चाहे तो कौन मार सकता है?
१५ राक्षस ।—प्रियम्बदक! अरे जो सच ही कहता है तो उन को झटपट लाता क्यों नहीं?
प्रियम्बदक ।—जो आज्ञा ( जाता है )।

( सिद्धार्थक के संग शकटदास आता है )

शकटदास ।—देख कर ( आप ही आप )

२० वह सूली गड़ी जो बड़ी दृढ कै,
सोई चन्द्र को राज थिर्‌यो प्रन तें।
लपटी वह फास की डोर सोई,
मनु श्री लपटी वृषलै मन ते॥
बजी डौंड़ी निरादर की नृप नन्द के,
२५ सोऊ लख्यो इन आखन ते।
नहि जानि परै इतनोहूं भए,
केहि हेत न प्रान कढ़े तन तें॥

(राक्षस को देख कर) यह मन्त्री राक्षस बैठे हैं। अहा

नन्द गए हू नहि तजन, प्रभुसेवा को स्वाद।
भूमि बैठि प्रगटत मनहु, स्वामिभक्त मरजाद॥

(पास जाकर) मन्त्री की जय हो।

राक्षस।— देख कर आनन्द से) मित्र शकटदास! आओ, मुझ से मिल लो, क्योंकि तुम दुष्ट चाणक्य के हाथ से बच के आए हो। ५

शकटदास।—(मिलता है)।

राक्षस।—(मिल कर) यहां बैठो।

शकटदास।—जो आज्ञा (बैठता है)। १०

राक्षस।—मित्र शकटदास! कहो तो यह आनन्द की बात कैसे हुई?

शकटदास।—(सिद्धार्थक को दिखा कर) इस प्यारे सिद्धार्थक ने सूली देनेवाले लोगों को हटा कर मुझ को बचाया।

राक्षस।—(आनन्द से) वाह सिद्धार्थक! तुम ने काम तो अमूल्य किया है, पर भला! तब भी यह जो कुछ है सो लो (अपने अग से आभरण उतार कर देता है)। १५

सिद्धार्थक।—(लेकर आप ही आप) चाणक्य के कहने से मैं सब करूंगा (पैर पर गिर के प्रकाश) महाराज! यहां मैं पहिले पहल आयाहूं, इस से मुझे यहां कोई नही जानता कि मैं उस के पास इन भूषणों को छोड़ जाऊं। इस से आप इसी अंगूठी से इस पर मोहर कर के अपने ही पास रक्खें, मुझे जब काम होगा ले जाऊंगा। २०

राक्षस।—क्या हुआ। अच्छा शकटदास! जो यह कहता है वह करो। २५

शकटदास।—जो आज्ञा (मोहर पर राक्षस का नाम देख कर धीरे से) मित्र! यह तो तुम्हारे नाम की मोहर है।

राक्षस।—(देख कर बड़े शोच से आप ही आप) हाय २ इस को तो जब मै नगर से निकला था तो ब्राह्मणी ने मेरे स्मरणार्थ ले लिया था, वह इस के हाथ कैसे लगी? (प्रकाश) सिद्धार्थक! तुम ने यह कैसे पाई?

५ सिद्धार्थक।—महाराज! कुसुमपुर मे जो चन्दनदास जौहरी है उन के द्वार पर पड़ी पाई।

राक्षस।—तो ठीक है।

सिद्धार्थक।—महाराज! ठीक क्या है?

राक्षस।—यही कि ऐसे धनिको के घर बिना यह वस्तु और

१० कहा मिले?

शकटदास।—मित्र! यह मन्त्री जी के नाम की मोहर है, इस से तुम इस को मन्त्री को दे दो, तो इस के बदले तुम्हे बहुत पुरस्कार मिलैगा।

सिद्धार्थक।—महाराज! मेरे ऐसे भाग्य कहा कि आप इसे लें।

१५ (मोहर देता है)

राक्षस।—मित्र शकटदास! इसी मुद्रा से सब काम किया करो।

शकटदास।—जो आज्ञा।

सिद्धार्थक।—महाराज! मै कुछ बिनती करू?

२० राक्षस।—हा हा! अवश्य करो।

सिद्धार्थक।—यह तो आप जानते ही है कि उस दुष्ट चाणक्य की बुराई कर के फिर मै पटने मे घुस नही सकता, इससे कुछ दिन आप ही के चरणों की सेवा किया चाहता हू।

राक्षस।—बहुत अच्छी बात है, हम लोग तो ऐसा चाहते ही थे, अच्छा है, यही रहो।

२५ सिद्धार्थक।—(हाथ जोड कर) बडी कृपा हुई।

राक्षस।—मित्र शकटदास! लेजाओ, इस को उतारो और सब

भोजनादिक का ठीक करो।

शकटदास।—जो आज्ञा।

( सिद्धार्थक को ले कर जाता है )

राक्षस। मित्र विराधगुप्त! अब तुम कुसुमपुर का वृत्तान्त जो छूट गया था सो कहो। वहा के निवासियों को मेरी बातै अच्छी लगती हे कि नही? ५

विराधगुप्त।—बहुत अच्छी लगती हैं, बरन वे सब तो आप ही के अनुयायी हे।

राक्षस।—ऐसा क्यों?

विराधगुप्त।—इस का कारण यह है कि मलयकेतु के निकलने के पीछे चाणक्य को चन्द्रगुप्त ने कुछ चिढ़ा दिया और चाणक्य ने भी उस की बात न सह कर चन्द्रगुप्त की आज्ञा भग कर के उस को दु खी कर रक्खा है, यह मै भली भाति जानता हूं। १०

राक्षस।—( हर्ष से ) मित्र विराधगुप्त! तो तुम इसी सपेरे के भेस से फिर कुसुमपुर जाओ और वहा मेरा मित्र स्तन-कलस नामक कवि है उस से कह दो कि चाणक्य के आज्ञाभगादिकों के कबित्त बना बना कर चन्द्रगुप्त को बढ़ावा देता रहै और जो कुछ काम हो जाय वह करभक से कहला भेजे। १५ २०

विराधगुप्त।—जो आज्ञा ( जाता है )।

( प्रियम्बदक आता है )

प्रियम्बदक।—जय हो महाराज! शकटदास कहते है कि यह तीन आभूषण बिकते हे, इन्हे आप देखै।

राक्षस।—( देख कर ) अहा यह तो बड़े मूल्य के गहने हैं, अच्छा शकटदास से कह दो कि दाम चुका कर ले ले। २५

प्रियम्बदक।—जो आज्ञा ( जाता हे )।

राक्षस।—तो अब हम भी चल कर करभक को कुसमपुर भेजें (उठता है)। अहा! क्या उस मृतक चाणक्य से चन्द्रगुप्त से बिगाड़ हो जायगा, क्यों नहीं? क्योंकि सब कामों को सिद्ध ही देखता हूं।

५

चन्द्रगुप्त निज तेज बल, करत सबन को राज।
तेहि समझत चाणक्य यह, मेरो दियो समाज॥
अपनो २ करि चुके, काज रह्यो कछु जौन।
अब जौ आपुस में लड़ें, तौ बड़ अचरज कौन॥

(जाता है)

१०

॥ इति द्वितीयाङ्क ॥

# तृतीय अंक

( स्थान--राजभवन की अटारी )

कञ्चुकी आता है।

कञ्चुकी।—हे रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों।
सो मिटे इन्द्रीगन सहित ह्वै सिथिल अतिही छोभ सों॥ ५
मानत कह्यौ कोउ नाहिं सब अङ्ग अङ्ग ढीले ह्वै गए।
तौहू न तृश्ने! क्यों तजत तू मोहि बूढ़ोह भए॥

( आकाश की ओर देख कर ) अरे! अरे! सुगाङ्गप्रसाद के लोगो! सुनो। महाराज चन्द्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी है कि कौमुदी-महोत्सव के होने से परम शोभित १० कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूं, इस से उस अटारी को बिछौने इत्यादि से सज रक्खो, देर क्यों करते हो! ( आकाश की ओर देख कर ) क्या कहा? कि क्या महाराज चन्द्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी-महोत्सव अब की न होगा? दुर दुइमारो! क्या मरने को लगे हो? शीघ्रता करो। १५

कवित्त।

बहु फूल की माल लपेट के खंभन धूप सुगंध सों ताहि धुपाइये। तापैं चहूं दिस चंद छुपा से सुसोभित चौर घने लटकाइये॥ भार सों चारु सिंहासन के मुरछा में धरा परी धेनु सी पाइये। छीटि के तापैं गुलाब मिल्यौ जल चन्दन ता २० कहं जाइ जगाइये॥

( आकाश की ओर देख कर ) क्या कहते हो—कि हम लोग अपने काम में लग रहे हैं? अच्छा २ झटपट सब सिद्ध करो, देखो! वह महाराज चन्द्रगुप्त आ पहुंचे।

बहु दिन श्रम करि नन्द नृप बह्यो राज धुर जौन ॥
बालेपन ही मे लियौ, चन्द सोस निज तौन ॥
डिगत न नेकहु विषम पथ, दृढ़ प्रतिज्ञ दृढ़ गात ॥
गिरन चहत सम्हरत बहुरि, नेकु न जिय घबरात ॥

५ ( नेपथ्य मे ) इधर महाराज इधर।

( राजा और प्रतिहारी आते हैं )

राजा।—( आप ही आप ) राज उसी का नाम है जिस में अपनी आज्ञा चले, दूसरे के भरोसे राज करना भी एक बोझा ढोना है। क्योंकि—

१० जो दूजे को हित करै, तौ खोवै निज काज।
जौ खोयो निज काज तौ, कौन बात को राज ॥
दूजे ही को हित करै, तौ वह परबस मूढ़।
कठपुतरी सो स्वाद कछु, पावै कबहु न कूढ़ ॥

और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी का सम्हालना
१५ बहुत कठिन है। क्योंकि—

क्रूर सदा भाखत पियहि, चञ्चल सहज सुभाव।
नर गुन औगुन नहि लखत, सज्जन खल सम भाव ॥
डरत सूर सों भीरु कह, गिनत न कछु रति*हीन।
बारनारि अरु लच्छमी, कहौ कौन बस कीन ॥

२० यद्यपि गुरु ने कहा है कि तू झूठी कलह कर के स्वतन्त्र हो कर अपना प्रबन्ध आप कर ले, पर यह तो बडा पाप सा है। अथवा गुरुजी के उपदेश पर चलने से हम लोग तो सदा ही स्वतन्त्र हैं।

जब लौं बिगारै काज नहि तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै।
२५ पै शिष्य जाइ कुराह तो गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै ॥

* रति का यहां प्रीति अर्थ है।

तासों सदा गुरु वाक्य बस हम नित्य पर आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु से सन्त जनही जगत मे स्वाधीन हैं॥

(प्रकाश) अजी बैहीनर! "सुगागप्रसाद" का मार्ग दिखाओ।

कचुकी।—इधर आइये महाराज इधर! ५

राजा।—(आगे बढ़ता है)।

कचुकी।—महाराज! सुगागप्रसाद की यही सीढ़ी है।

राजा।—(ऊपर चढ़ कर) अहा! शरद् ऋतु की शोभा से सब दिशाएं कैसी सुन्दर हो रही हैं!

सरद विमल ऋतु सोहई, निरमल नील अकास। १०
निसानाथ पूरन उदित, सोलह कला प्रकास॥
चारु चमेली बन रही, महमह महँकि सुबास।
नदी तीर फूले लखौ, सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमोदिनि सरन मे, फूले सोभा देत।
भौंर बृन्द जापै लखौ, गूंजि गूंजि रस लेत॥ १५
बसन चांदनी चन्दमुख, उडुगन मोती माल।
कास फूल मधु हास यह, सरद किधौं नव बाल॥

(चारो ओर देख कर) कचुकी! यह क्या? नगर मे "चन्द्रिकोत्सव" कही नही मालूम पड़ता; क्या तू ने सब लोगों से ताकीद कर के नही कहा था कि उत्सव होय? २०

कचुकी।—महाराज! सब से ताकीद कर दी थी।

राजा।—तो फिर क्यों नही हुआ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नही मानी?

कचुकी।—(कान पर हाथ रख कर) राम राम! भला नगर क्या, इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आप की आज्ञा न माने? २५

राजा ।—तो फिर चन्द्रिकोत्सव क्यों नही हुआ ? देख न—

गज रथ बाजि सजे नही, बँधी न बन्दनवार ।
तने बितान न कहुँ नगर, रंजित कहूं न द्वार ॥
नर नारी डोलत न कहुँ, फूल माल गल डार ।
५ नृत्य बाद धुनिगीत नहि, सुनियत श्रवन मँझार ॥

कंचुकी ।—महाराज ! ठीक है—ऐसा ही है ।

राजा ।—क्यों ऐसा ही है ?

कंचुकी ।—महाराज योंही है ।

राजा ।—स्पष्ट क्यों नही कहता ?

१० कंचुकी ।—महाराज ! चन्द्रिकोत्सव बन्द किया गया है ।

राजा ।—( क्रोध से ) किस ने बन्द किया है ?

कंचुकी ।—( हाथ जोड़ कर ) महाराज ! यह मे नही कह सकता ।

राजा ।—कही आर्य्य चाणक्य ने तो नही बन्द किया ?

१५ कंचुकी ।—महाराज ! और किस को अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी ?

राजा ।—( अत्यन्त क्रोध से ) अच्छा, अब हम बैठेंगे ।

कंचुकी ।—महाराज ! यह सिंहासन है, विराजिए ।

राजा ।—(बैठ कर क्रोध से) अच्छा, कंचुकी ! आर्य्य चाणक्य से कह कि "महाराज आपको देखा चाहते हे ।"

२० कंचुकी ।—जो आज्ञा ( बाहर जाता हे ) ।

( एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखाई पड़ता है । )

चाणक्य ।—( आप ही आप ) दुष्ट राक्षस हमारी बराबरी करता है, वह जानता है कि—

२५ जिमि हम नृप अपमान सों, महा क्रोध उर धारि ।
करी प्रतिज्ञा नन्द नृप, नासन की निरधारि ॥

सो नृप नन्द हि पुत्र सह नासि करी हम पूर्ण।
चन्द्रगुप्त राजा कियो, करि राक्षस मद चूर्ण॥
तिमि सोऊ मोहि नीति बल, छलन चहन हति चन्द।
पै मो आछत यह जतन, वृथा तासु अति मन्द॥

(ऊपर देख कर क्रोध से) अरे राक्षस! छोड़ छोड़ यह व्यर्थ का श्रम, देख— ५

जिमि नृप नन्दहि मारि कै, वृषलहि दीनो राज।
आइ नगर चाणक्य किय, दुष्ट सर्प सो काज॥
तिमि सोऊ नृप चन्द्र को, चाहत करन बिगार।
निज लघु मति लाघ्यौ चहत, मो बल बुद्धि पहार॥ १०

(आकाश की ओर देख कर) अरे राक्षस! मेरा पीछा छोड़ क्योंकि—

राज काज मन्त्री चतुर, करत बिना अभिमान।
जैसो तुव नृप नन्द हो, चन्द्र न तौन समान॥
तुम कछु नहि चाणक्य जो, साधौ कठिनहु काज। १५
तासों हम सों बैर करि, नहि सरि है तुव राज॥

अथवा इस मे तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिये। क्योंकि—

मम भागुरायन आदि भृत्यन मलय राख्यौ घेरिकै।
तिमि गए सिद्धारथक ऐहैं तेउ काज निबेरिकै॥
अब लखहु करि छल कलह नृपसों भेद बुद्धि उपाइकै। २०
पर्ब्बत जनन सों हम बिगारत राक्षस हि उलटाइकै॥

कञ्चुकी।—हा! सेवा बड़ी कठिन होती है।

नृप सों सचिव सों सत्र मुसाहेब गनन सों डरते रहो।
पुनि विटहु जे अति पास के तिनकौ कह्यौ करते रहौ॥
मुख लखत बीतत दिवस निसि भय रहत सकित प्रानहै। २५
निज उदर पूरन हेतु सेवा श्वान वृत्ति समान है॥

[ चारो ओर घूम कर देख कर ]

अहा ! यही आर्य्य चाणक्य का घर है तो चल ( कुछ आगे बढ कर और देख कर )।

अहाहा ! यह राजाधिराज श्रीमन्त्री जी के घर की सम्पत्ति है। जो—

कहु परे गोमय शुष्क कहु सिल परी सोभा दै रही।
कहु तिल कहु जव रासि लागी बटुन जा भिक्षा लही॥
कहु कुस परे कहु समिध सूखत भार सों ताके नयो।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसो झुकि गयो॥

महाराज चन्द्रगुप्त के भाग्य से ऐसा मन्त्री मिला है—

बिन गुनहू के नृपन कों, धन हित गुरुजन धाइ।
सूखो मुख करि झूठही, बहु गुन कहहि बनाइ॥
पै जिन को तृष्णा नही, ते न लबार समान।
तिन सों तृन सम धनिक जन, पावत कबहु न मान॥

( देख कर डर से ) अरे आर्य्य चाणक्य यहा बैठे हैं, जिन्होंने—

लोक धरसि चन्द्रहि कियो, राजा, नन्द गिराइ।
होत प्रात रवि के कढत, जिमि ससि तेज नसाइ॥

( प्रगट दण्डवत् कर के ) जय हो ! आर्य्य की जय हो ! !

चाणक्य।—( देख कर ) कौन है वेहीनर ! क्यों आया है ?

कञ्चुकी।—आर्य्य ! अनेक राजगणो के मुकुट माणिक्य से सर्वदा जिन के पदतल लाल रहते है उन महाराज चन्द्रगुप्त ने आप के चरणो मे दण्डवत् कर के निवेदन किया है कि 'यदि आप के किसी कार्य्य मे विघ्न न पडे तो मै आप का दर्शन किया चाहता हूं।"

चाणक्य।—वेहीनर ! क्या वृषल मुझे देखा चाहता है ? क्या मै ने कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध कर दिया है यह वृषल नही जानता ?

कञ्चुकी।—आर्य्य, क्यों नहीं।

चाणक्य।—( क्रोध से ) है? किस ने कहा बोल तो?

कञ्चुकी।—( भय से ) महाराज प्रसन्न हों, जब सुगांगप्रसाद की अटारी पर गए थे तो देख कर महाराज ने आप ही जान लिया कि कौमुदी-महोत्सव अबकी नहीं हुआ। ५

चाणक्य।—अरे ठहर, मैं ने जाना यह तुम्हीं लोगों ने वृषल का जी मेरी ओर से फेर कर उसे चिढ़ा दिया है, और क्या।

कञ्चुकी।—( भय से नीचा मुंह कर के चुप रह जाता है। )

चाणक्य।—अरे राज के कारबारियों का चाणक्य के ऊपर बड़ा ही विद्वेष पक्षपात है। अच्छा, वृषल कहां है? बता। १०

कञ्चुकी।—( डरता हुआ ) आर्य्य! सुगांगप्रसाद की अटारी पर से महाराज ने मुझे आप के चरणों में भेजा है।

चाणक्य।—(उठकर) कञ्चुकी! सुगांगप्रसाद का मार्ग बता।

कञ्चुकी।—इधर महाराज ( दोनों घूमते हैं )। १५

कञ्चुकी।—महाराज! यह सुगांगप्रसाद की सीढ़ियां हैं, चढ़ें। ( दोनों सुगांगप्रसाद पर चढते हैं और चाणक्य के घर का परदा गिर के छिप जाता है। )

चाणक्य।—( चढ़ कर और चन्द्रगुप्त को देख कर प्रसन्नता से आप ही आप ) अहा! वृषल सिंहासन पर बैठा है— २०

हीन नन्द सों रहित नृप, चन्द्र करत जेहि भोग।
परम होत सन्तोष लखि, आसन राजा जोग॥

( पास जाकर ) जय हो वृषल की!

चन्द्रगुप्त।—(उठ कर और पैरों पर गिर कर ) आर्य्य! चन्द्रगुप्त दण्डवत् करता है। २५

चाणक्य।—( हाथ पकड़ कर उठाकर ) उठो बेटा! उठो।

जहं लों हिमालय के शिखर सुरधुनी कन सीतल रहैं।

जहँ लों विविध मणिखण्ड मंडित समुद दक्षिणदिसि बहै ॥
तहँ लों सबै नृप आइ भय सों तोहि सीस झुकावही।
तिनके मुकुट मणि रँगे तुव पद निरखि हम सुख पावही॥

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य ! आप की कृपा से ऐसा ही हो रहा है।
५ बैठिए।

(दोनों यथास्थान बैठते हैं)

चाणक्य।—वृषल ! कहो, मुझे क्यों बुलाया है ?

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य के दर्शन से कृतार्थ होने को।

चाणक्य।—(हँस कर) भया, बहुत शिष्टाचार हुआ, अब
१० बताओ क्यों बुलाया है ? क्योंकि राजा लोग किसी को
बेकाम नहीं बुलाते।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य ! आप ने कौमुदी महोत्सव के न होने में
क्या फल सोचा है ?

चाणक्य।—[हँस कर] तो यही उलाहना देने को बुलाया
१५ है न ?

चन्द्रगुप्त।—उलाहना देने को कभी नहीं।

चाणक्य।—तो क्यों ?

चन्द्रगुप्त।—पूछने को।

चाणक्य।—जब पूछना ही है तब तुम को इससे क्या ? शिष्य
२० को सर्व्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए।

चन्द्रगुप्त।—इस में कोई सन्देह नहीं पर आप की रुचि बिना
प्रयोजन नहीं प्रवृत्त होती, इस से पूछा।

चाणक्य।—ठीक है तुम ने मेरा आशय जान लिया, बिना
प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी ओर कभी फिरती
२५ ही नहीं।

चन्द्रगुप्त।—इसी से तो सुनने बिना मेरा जी अकुलाता है।

चाणक्य।—सुनो, अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे
हैं—एक राजा के भरोसे, दूसरा मन्त्री के भरोसे, तीसरा

राजा और मन्त्री दोनों के भरोसे, सो तुम्हारा राज तो केवल सचिव के भरोसे है, फिर इन बातों के पूछने से क्या? व्यर्थ मुह दुखाना है, यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जानैं। ५

( राजा क्रोध से मुह फेर लेता है )

( नेपथ्य मे दो बैतालिक गाते है )

प्रथम वै०।—( राग बिहाग ) अहो यह शरद शम्भु ह्वै आई।
कास फूल फूले चहु दिसि ते सोइ मनु भस्म लगाई॥
चन्द उदित सोइ सीस अभूषन सोभा लगत सुहाई।
तासों रजित घन पटली सोइ मनु गज खाल बनाई॥ १०
फूले कुसुम मुरुड माला सोइ सोहत अति धवलाई।
राजहस सोभा सोइ मानों हास विभव दरसाई॥
अहो यह शरद शम्भु बनि आई।

( और भी )

( राग कलिंगड़ा ) हरौ हरि नयन तुम्हारी बाधा। १५
सरदागम लखि सेस अक तें जगे जगत शुभ साधा।
कछु कछु खुले मुदे कछु सोभित आलस भरि अनियारे॥
अरुन कमल से मद के माते थिर भे जदपि ढरारे॥
सेस सीस मनि चमक चकौंधन तनिकहु नहि सकुचाही।
नींद भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमला उर माही॥ २०
हरौ हरि नैन तुम्हारी बाधा।

दूसरा वै०।—( कड़खे की चाल मैं )
अहो, जिन कों बिधि सब जीव सों, बढ़ि दीनो जग काज।
अरे, दान सलिल वारे सदा जे जीतहि गजराज॥
अहो, झुक्यो न जिन को मान ते, नृपवर जग सिरताज। २५
अरे, सहहि न आज्ञा भग जिमि दन्तपात मृगराज॥

( और भी )

अरे, केवल बहु गहिना पहिरि राजा होइ न कोय।
अहो, जाकी नहि आज्ञा टरै, सो नृप तुम सम होय॥

चाणक्य।—( सुन कर आप ही आप ) भला पहिले ने तो देवता रूप शरद के वर्णन मे आशीर्वाद दिया, पर इस दूसरे ने क्या कहा? [—कुछ सोच कर ] अरे जाना, यह सब राक्षस की करतूत है। अरे दुष्ट राक्षस! क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो नहीं गया है?

चन्द्रगुप्त।—अजी वैहीनर! इन दोनों गानेवालों को लाख लाख मोहर दिलवा दो।

वैहीनर।—जो आज्ञा महाराज ( उठ कर जाना चाहता है )।

चाणक्य।—वैहीनर, ठहर अभी मत जा। वृषल, यह अर्थ कुपात्र को इतना क्यों देते हो?

चन्द्रगुप्त।—आप मुझे सब बातों में योंही रोक दिया करते हैं, तब यह मेरा राज क्या है वरन उलटा बन्धन है।

चाणक्य।—वृषल! जो राजा आप असमर्थ होते हैं उन मे इतना ही तो दोष है, इस से जो ऐसी इच्छा हो तो तुम अपने राज का प्रबन्ध आप कर लो।

चन्द्रगुप्त। बहुत अच्छा, आज से मैं ने सब काम सम्हाला।

चाणक्य।—इस से अच्छी और क्या बात है, तो मैं भी अपने अधिकार पर सावधान हूं।

चन्द्रगुप्त।—जब यही है तो पहिले मैं पूछता हूं कि कौमुदी-महोत्सव का निषेध क्यों किया गया?

चाणक्य।—मैं भी यही पूछता हूं कि उस के होने का प्रयोजन क्या था?

चन्द्रगुप्त।—पहिले तो मेरी आज्ञा का पालन।

चाणक्य।—मैं ने भी आप की आज्ञा के अपालन के हेतु हो कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध किया।

क्यौंकि—

आइ चारहू सिन्धु के, छोरहु के भूपाल।
जो सासन सिर पै धरैं जिमि फूलन की माल॥ ५
तेहि हम जौ कछु टारहीं, सोउ तुव हित उपदेश।
जासों तुमरो विनय गुन, जग मैं बढ़ै नरेस॥

चन्द्रगुप्त।—और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूं।

चाणक्य।—वह भी कहता हूं।

चन्द्रगुप्त।—कहिए। १०

चाणक्य।—शोणोत्तरे! अचलदत्त कायस्थ से कहो कि तुम्हारे पास जो भद्रभट इत्यादिकों का लेखपत्र है वह मांगा है।

प्र०।—जो आज्ञा (बाहर से पत्र लाकर देती है)।

चाणक्य।—वृषल! सुनो। १५

चन्द्रगुप्त।—मैं उधर ही कान लगाए हूं।

चाणक्य।—(पढ़ता है) स्वस्ति परम प्रसिद्ध नाम महाराज श्री चन्द्रगुप्त देव के साथी जो अब उन को छोड़ कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए हैं उन का यह प्रतिज्ञापत्र है। पहिला गजाध्यक्ष, भद्रभट, अश्वाध्यक्ष, पुरुषदत्त, २० महाप्रतिहार चन्द्रभानु का भानजा हिंगुरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त, महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालवे के राजा का पुत्र रोहिताक्ष और क्षत्रियों में सब से प्रधान विजयवर्म्मा (आप ही) ये हम सब लोग यहां २५ महाराज का काम सावधानी से साधते हैं (प्रकाश) यही इस पत्र में लिखा है। सुना?

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! मै इन सबों के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूं।

चाणक्य।—वृषल! सुनो—वह जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष थे वह रात दिन मद्य, स्त्री और जूआ में डूब कर अपने काम से निरे बेसुध रहते थे इस से मैं ने उन से अधिकार लेकर केवल निर्वाह के योग्य जीविका कर दी थी, इस से उदास हो कर कुमार मलयकेतु के पास चले गए और वहा अपना अपना कार्य्य सुना कर फिर उसी पद पर नियुक्त हुए है, और हिंगुरात और बलगुप्त ऐसे लालची है कि कितना भी दिया पर अन्त में मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे कि वही बहुत मिलेगा, और जो आप का लड़कपन का सेवक राजसेन था उस ने आप की थोडी ही कृपा से हाथी, घोड़ा, घर और धन सब पाया, पर इस भय से भाग कर मलयकेतु के पास चला गया कि यह सब छिन न जाय, और वह जो सिंह-बलदत्त सेनापति का छोटा भाई भागुरायण है उस से पर्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उस ने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि "जैसे विश्वासघात कर के चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हे भी मार डालैगा इस से यहा से भाग चलो", ऐसे ही बहकाकर कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आप के बैरी चन्दनदासादिकों को दण्ड हुआ तब मारे डर के मलयकेतु के पास जा रहा, उस ने भी यह समझ कर कि इस ने मेरे प्राण बचाए और मेरे पिता का परिचित भी है उस को कृतज्ञता से अपना अन्तरंगी मन्त्री बनाया है, और वह जो रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा थे वह ऐसे अभिमानी थे कि जब आप उन के और नातेदारों का आदर करते थे तो वह कुढ़ते थे,

इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गए, बस, यही उन लोगों की उदासी का कारण है।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! जब इन सब के भागने का उद्यम जानते ही थे तो क्यो न रोक रक्खा?

चाणक्य।—ऐसा कर नही सके। ५

चन्द्रगुप्त।—क्या आप इस मे असमर्थ हो गए वा कुछ उस मे भी प्रयोजन था?

चाणक्य।—असमर्थ कैसे हो सकते है? उस मे भी कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! वह प्रयोजन मै सुना चाहता हू। १०

चाणक्य।—सुनो और भूल मत जाओ।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! मै सुनता हुई हूं, भूलूगा भी नही, कहिए।

चाणक्य।—अब जो लोग उदास हो गए है या बिगड़ गए है उन के दो ही उपाय है, या तो फिर से उन पर अनुग्रह करें या उन को दण्ड दें और भद्रभट, पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अब उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उन को उन का अधिकार दिया जाय, और यह हो नही सकता, क्योंकि उन को मृगया, मद्यपानादिक का जो व्यसन है इस से इस योग्य नही हैं कि हाथी, घोड़ों को सम्हाले और सब सेना की जड़ हाथी, घोड़े ही है। वैसे ही हिंगुरात, बलगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है, क्योंकि उन को सब राज्य पाने से भी सन्तोष न होगा, और राजसेन भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे है; ये तो प्रसन्न होई नही सकते, और रोहिताक्ष, विजयवर्म्मा का तो कुछ पूछना ही नही है, क्योंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते हैं और उन का

कितना भी मान करो, उन्हे थोड़ा ही दिखलाता है, तो इस का क्या उपाय है। यह तो अनुग्रह का वर्णन हुआ, अब दण्ड का सुनिये, कि यदि हम इन सबों को प्रधान पद पाकर के जो बहुत दिनों से नन्दकुल के सर्व्वदा
५ शुभाकाङ्क्षी और साथी रहे दण्ड दे कर दुखी करैं तो नन्दकुल के साथियों का हम पर से विश्वास उठ जाय इस से छोड़ ही देना योग्य समझा, सो उन्ही सब हमारे भृत्यों के पक्षपाती बन कर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बडी सहायता पा कर और अपने
१० पिता के वध से क्रोधित हो कर पर्व्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगों से लड़ने को उद्यत हो रहा है, सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है उत्सव का समय नही। इस से गढ के संस्कार के समय कौमुदी महोत्सव क्या होगा, यही सोच कर उस का प्रतिषेध कर दिया।

१५ चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! मुझे अभी इस मे बहुत कुछ पूछना है।

चाणक्य।— भली भांति पूछो, क्योंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है।

चन्द्रगुप्त।—यह पूछता हूं —

२० चाणक्य।—हां! मैं भी कहता हूं।

चन्द्रगुप्त।—यह कि हम लोगों के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है, उसे आप ने भागती समय क्यों नही पकडा?

चाणक्य।-- बृषल! मलयकेतु के भागने के समय भी दोही
२५ उपाय थे- या तो मेल करते या दण्ड देते, जो मेल करते तो आधा राज देना पड़ता और जो दण्ड देते तो फिर यह हम लोगों की कृतघ्नता सब पर प्रसिद्ध हो जाती

कि इन्ही लोगों ने पर्व्वतक को भी मरवा डाला और जो आधा राज देकर अब मेल कर लें तो भी उस बिचारे पर्व्वतक के मारने का पाप ही पाप हाथ लगे। इससे मलयकेतु को भागती समय छोड़ दिया।

चन्द्रगुप्त।—और भला राक्षस इसी नगर मे रहता था, उस का भी आप ने कुछ न किया इस का क्या उत्तर है? ५

चाणक्य।--सुनो, राक्षस अपने स्वामी की स्थिर भक्ति से और यहा के बहुत दिन के रहने से यहा के लोगों का और नन्द के सब साथियों का विश्वासपात्र हो रहा है और उस का स्वभाव सब लोग जान गए हैं और उसमें बुद्धि १० और पोरुष भी है वैसे हो उस के सहायक भी है और कोषबल भी है, इस से जो वह यहा रहे तो भीतर के सब लोगों को फोड़ कर उपद्रव करै और जो यहा से दूर रहै तो वह ऊपरी जोड़ तोड़ लगावे पर उन के मिटाने में इतनी कठिनाई न हो इस से उसके जाने के समय १५ उपेक्षा कर दी गई।

चन्द्रगुप्त।--तो जब वह यहा था तभी उस को वश में क्यों नही कर लिया?

चाणक्य।--वश क्या कर ले, अनेक उपायों से तो वह छाती में गड़े कांटे की भांति निकाल कर दूर किया गया है। उसे दूर करने में और कुछ प्रयोजन ही था। २०

चन्द्रगुप्त। तो बल से क्यों नही पकड़ रक्खा?

चाणक्य।—वह राक्षस ऐसा नही है, उस पर जो बल किया जाय तो या तो वह आप मारा जाय या तुम्हारा नाश करदे।

और—

हम खोवैं इक महत नर जो वह पावै नास। २५<br>
जो वह नासै सैन तुव तौहू जिय अति त्रास॥

तासों छल बल करि बहुत अपने बस करि वाहि।
जिमि गज पकरैं सुग्रर तिमि बाधैंगे हम ताहि॥

चन्द्रगुप्त।—मै आप की बात तो नही काट सकता, पर इस से तो मन्त्री राक्षस ही बढ चढ के जान पडता है।

५ चाणक्य।—( क्रोध से ) 'आप नही' इतना क्यों छोड दिया? ऐसा कभी नही है उसने क्या किया है कहो तो?

चन्द्रगुप्त।—जो आप न जानते हो तो सुनिये कि वह महात्मा

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुशलात।
जब लों जित चाह्यौ रह्यौ धारि सीस पै लात॥
१० डोडी फेरन के समय निज बल जय प्रगटाय।
मेरे बल के लोग कों दीनों तुरत हराय॥
मोहे परिजन रीति सों जाके सब बिनु त्रास।
जौ मोपै निज लोकहू आनहि नहि बिश्वास॥

चाणक्य।—( हस कर ) वृषल! राक्षस ने यह सब किया?

१५ चन्द्रगुप्त।—हा! हा! अमात्य राक्षस ने यह सब किया।

चाणक्य।—तो हमने जाना, जिस तरह नन्द का नाश करके तुम राजा हुए वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! यह उपालम्भ आप को नही शोभा देता, करने वाला सब दैव है।

२० चाणक्य।—रे कृतघ्न!

अतिहि क्रोध करि खोलि कै, सिखा प्रतिज्ञा कीन।
सो सब देखन भुव करी, नव नृप नन्द विहीन॥
घिरी स्वान अरु गीध सों, भय उपजावनिहारि।
जारि नन्दहू नहि भई, सान्त मसान दवारि॥

२५ चन्द्रगुप्त।—यह सब किसी दूसरे ने किया।

चाणक्य।—किस ने?

चन्द्रगुप्त।—नन्दकुल के द्वेषी दैव ने।

चाणक्य । —दैव तो मूर्ख लोग मानते हैं ।

चन्द्रगुप्त ।—और विद्वान् लोग भी यद्वा तद्वा करते हैं ।

चाणक्य ।—( क्रोध नाट्य कर के ) अरे वृषल ! क्या नौकरों की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है ?

खुली सिखाहू बांधिबे चञ्चल भे पुनि हाथ । ५

( क्रोध से पैर पृथ्वी पर पटक कर )

ओर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ ॥

नन्द नसे सों निरुज ह्वै तू फूल्यौ गरबाय ।

सो अभिमान मिटाइहौं तुरतहि तोहि गिराय ॥

चन्द्रगुप्त ।—( घबड़ा कर ) अरे ! क्या आर्य्य को सचमुच क्रोध आ गया ! १०

फर फर फरकत अधर पुट, भए नयन जुग लाल ।

चढ़ी जाति भौंहै कुटिल, स्वास तजत जिमि व्याल ॥

मनहुँ अचानक रुद्रदृग खुल्यौ छितिय दिखरात ।

( आवेग सहित ) १५

धरनी धार्यौ बिनु धसे हा हा किमि पदघात ॥

चाणक्य ।—(नकली क्रोध रोक कर) तो वृषल ! इस कोरी बकवाद से क्या लाभ है ! जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे । ( शस्त्र फेंक कर और उठ कर ) (आप ही आप) ह ह ह ! राक्षस ! यही तुम ने चाणक्य को जीतने का उपाय किया । २०

तुम जानौ चाणक्य सों नृप चन्दहि लरवाय ।

सहजहि लैहैं राज हम निज बल बुद्धि उपाय ॥

सो हम तुमही कह छलन कियो क्रोध परकास ।

तुमरोई करिहै उलटि यह तुव भेद बिनास ॥ २५

( क्रोध प्रकट करता हुआ चला जाता है )

चन्द्रगुप्त ।—आर्य्य वैहीनर ! "चाणक्य का अनादर कर के

आज से हम सब काम काज आपही सम्हालेंगे' यह लोगों से कह दो।

कञ्चुकी।—( आप ही आप ) अरे! आज महाराज ने चाणक्य के पहले आर्य्य शब्द नहीं कहा! क्यों? क्या सच मुच अधिकार छीन लिया? वा इस में महाराज का क्या दोष है।

सचिव दोष सों होत हैं, नृपहु बुरे ततकाल।
हाथीवान प्रमाद सों, गज कहवावत व्याल॥

चन्द्रगुप्त।—क्यों जी? क्या सोच रहे हो?

कञ्चुकी।—यही कि महाराज को महाराज शब्द अब यथार्थ शोभा देता है।

चन्द्रगुप्त।—( आप ही आप ) इन्हीं लोगों के धोखा खाने से आर्य्य का काम होगा। ( प्रगट ) शोणोत्तरे! इस सूखी कलह से हमारा सिर दुखने लगा, इस से शयनगृह का मार्ग दिखलाओ।

प्रतिहारी।—इधर आवें महाराज, इधर आवें।

चन्द्रगुप्त।—( उठ कर चलता हुआ आप ही आप )

गुरु आयसु छल सों कलह, करिहू जीय डराय।
किमि नर गुरुजन सों लरहि, यहै सोच जिय हाय॥"

( सब जाते हैं—जवनिका गिरती है )

॥ तृतीय अङ्क समाप्त हुआ॥

# चतुर्थ अंक

स्थान—मन्त्री राक्षस के घर के बाहर का प्रान्त।

( करभक घबड़ाया हुआ आता है )

करभक।—अहाहा हा! अहाहा हा!

अतिशय दुरगम ठाम मैं, सत जोजन सों दूर। ५
कौन जात है धाइ बिनु, प्रभु निदेस भरपूर॥

अब राक्षस मन्त्री के घर चलूं ( थका सा घूम कर ) अरे कोई चौकीदार है? स्वामी राक्षस मन्त्री से जाकर कहो कि 'करभक काम पूरा कर के पटने से दौड़ा आता है'। १०

( दौवारिक आता है )

दौवारिक।—अजी! चिल्लाओ मत, स्वामी राक्षस मन्त्री को राजकाज सोचने २ सिर में ऐसी बिथा हो गई है कि अब तक सोने के बिछौने से नहीं उठे, इस से एक घड़ी भर ठहरो, अवसर मिलता है तो मैं निवेदन किये देता हूं। १५
( परदा उठता है और सोने के बिछौने पर चिन्ता में भरा राक्षस और शकटदास दिखाई पड़ते हैं )

राक्षस।—( आप ही आप ) -

कारज उलटो होत है, कुटिल नीति के जोर।
का कीजे सोचत यही, जागि होय है भोर॥ २०

और भी।

आरम्भ पहिले सोचि रचना बेरा की करि लावहीं।
इक बात मैं गर्भित बहुत फल गूढ़ भेद दिखावहीं॥
कारन अकारन सोचि फैली क्रियन कों सकुचावहीं।
जे करहिं नाटक बहुत दुख हम सरिस तेऊ पावहीं॥ २५

और भी वह दुष्ट ब्राह्मण चाणक्य –

दौवारिक ।—जय जय ।

राक्षस ।– किसी भांति मिलाया या पकड़ा जा सकता है ?

दौवारिक ।– अमात्य—

५ राक्षस ।—( बाएं नेत्र के फड़कने का अपशकुन देख कर आप ही आप ) 'ब्राह्मण चाणक्य जय जय' और 'पकड़ा जा सकता है, अमात्य' यह उलटी बात हुई और उसी समय असगुन भी हुआ। तौ भी क्या हुआ, उद्यम नहीं छोड़ेंगे ( प्रकाश ) भद्र ! क्या कहता है ?

१० दौवारिक ।—अमात्य ! पटने से करभक आया है सो आप से मिला चाहता है ।

राक्षस ।—अभी लाओ ।

दौवारिक ।—जो आज्ञा ( करभक के पास जाकर, उसको संग ले आकर ) भद्र ! मन्त्री जी वह बैठे हैं, उधर जाओ

१५ ( जाता है ) ।

करभक ।—( मन्त्री को देख कर ) जय हो, जय हो ।

राक्षस ।—अजी करभक ! आओ आओ, अच्छे हो ?—बैठो ।

करभक ।—जो आज्ञा ( पृथ्वी पर बैठ जाता है ) ।

राक्षस ।—( आप ही आप ) अरे ! मैं ने इस को किस काम का भेद लेने को भेजा था यह भूला जाता है ( चिन्ता-

२० करता है ) ।

( बेत हाथ में लेकर एक पुरुष आता है )

पुरुष ।– हटे रहना—बचे रहना—अजी दूर रहो—दूर रहो, क्या नहीं देखते ?

२५ नृप द्विजादि जिन नरन को, मंगल रूप प्रकास ।
ते न नीच मुखहू लखहि, कैसो पास निवास ॥*

---

* प्राचीनकाल में आचार्य, राजा आदि नीचो का नहीं देखते थे ।

( आकाश की ओर देख कर ) अजी क्या कहा, कि क्यों हटाते हो? अमात्य राक्षस के सिर में पीड़ा सुन कर कुमार मलयकेतु उन को देखने को इधर ही आते हैं ( जाता है ) ।

( भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु आता है )। ५

मलयकेतु।—( लंबी सांस लेकर—आप ही आप ) हा! देखो पिता को मरे आज दस महीने हुए और व्यर्थ वीरता का अभिमान कर के अब तक हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया, बरन तर्पण करना भी छोड़ दिया। या क्या हुआ, मैं ने तो पहिले यही प्रतिज्ञा ही किया है। १०

कर वलय उर ताड़त गिरे, आचरहु की सुधि नहिं परी।
मिलि करहिं आरतनाद हाहा, अलक खुलि रज सों भरी॥
जो शोक सों भइ मात गन की दशा सो उलटाए हैं।
करि रिपु जुवतिगन की सोई गति पितहि तृप्ति कराए हैं॥

और भी— १५

रन मरि पितु ढिग जात हम, बीरन की गति पाइ।
कै माता दृग जल धरन, रिपु जुवती मुख लाइ॥

( प्रकाश ) अजी जाजले! सब राजा लोगों से कहो कि "मैं बिना कहे सुने राक्षस मन्त्री के पास अकेला जाकर उन को प्रसन्न करूंगा" इस से वे सब लोग उधर ही ठहरैं। २०

कंचुकी। जो आज्ञा ( घूमते २ नेपथ्य की ओर देख कर। ) अजी राजा लोग! सुनो, कुमार की आज्ञा है कि मेरे साथ कोई न चलै ( देख कर आनन्द से) महाराजकुमार! आप देखिये। आप की आज्ञा सुनते ही सब राजा रुक गए— २५

अति चपल जे रथ चलत ते, सुनि चित्र से तुरतहि भए।
जे खुरन खोदत नभ पथहि, ते बाजिगन झुकि रुकि गए॥

जे रहे धावत ठिठकि ते, गज मूक घण्टा सह सधे।
मरजाद तुव नहिं तजहि नृपगण, जलधि से मानहु बँधे।

मलयकेतु।—अजी जाजले! तुम भी सब लोगों को लेकर जाओ, एक केवल भागुरायण मेरे संग रहे।

५ कञ्चुकी।—जो आज्ञा (सब को लेकर जाता है)।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! जब मैं यहा आता था तो भद्रभट प्रभृति लोगों ने मुझ से निवेदन किया कि "हम राक्षस मन्त्री के द्वारा कुमार के पास नही रहा चाहते, कुमार के सेनापति शिखरसेन के द्वारा रहैंगे। दुष्ट मन्त्री
१० ही के डर से तो चन्द्रगुप्त को छोड़ कर यहा सब बात का सुबीता जान कर कुमार का आश्रय लिया है।" सो उन लोगों की बात का मैं ने आशय नही समझा।*

भागुरायण।—कुमार! यह तो ठीक ही है क्योंकि अपने कल्याण के हेतु सब लोग स्वामी का आश्रय हित और
१५ प्रिय के द्वारा करते हैं।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! तो फिर राक्षस मन्त्री तो हम लोगों का परमप्रिय और बड़ा हित है।

भागुरायण।—ठीक है, पर बात यह है कि अमात्य राक्षस का बैर चाणक्य से है, कुछ चन्द्रगुप्त से नही है, इस से जो
२० चाणक्य की बातों से रूठ कर चन्द्रगुप्त उन से मन्त्री का काम ले ले और नन्दकुल की भक्ति से "यह नन्द ही के वंश का है" यह सोच कर राक्षस चन्द्रगुप्त से मिल जाय और चन्द्रगुप्त भी अपने बड़े लोगों का पुराना मन्त्री समझ कर उस को मिला ले, तो ऐसा न हो कि कुमार
२५ हम लोगों पर भी विश्वास न करें।

---

* चाणक्य के मन्त्र ही से लोगों ने मलयकेतु से ऐसा कहा था।

मलयकेतु।—ठीक है, मित्र भागुरायण! राक्षस मन्त्री का घर कहां है?

भागुरायण।—इधर कुमार इधर। (दोनों घूमते हैं) कुमार! यही राक्षस मन्त्री का घर है—चलिए।

मलयकेतु।—चलो (दोनों राक्षस के निकट जाते हैं)। ५

राक्षस।—अहा! स्मरण आया (प्रकाश) कहो जी! तुम ने कुसुमपुर में स्तनकलस वैतालिक को देखा था?

करभक।—क्यों नहीं?

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! जब तक कुसुमपुर की बातें हों तब तक हम लोग इधर ही ठहर कर सुनें कि क्या १० बात होती है, क्योंकि—

भेद न कछु जामैं खुले, याही भय सब ठौर।
नृप सों मन्त्री जन कहहिं, बात और की और॥

भागुरायण।—जो आज्ञा (दोनों ठहर जाते हैं)।

राक्षस।—क्यों जी! काम सिद्ध हुआ? १५

करभक।—अमात्य की कृपा से सब काम सिद्ध ही है।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! वह कौन सा काम है?

भागुरायण।—कुमार! मन्त्री के जी की बातें बड़ी गुप्त हैं। कौन जाने? इस से देखिये अभी सुन लेते हैं कि क्या कहते हैं। २०

राक्षस।—अजी, भली भांति कहो।

करभक।—सुनिये—जिस समय आप ने आज्ञा दिया कि करभक, तुम जाकर वैतालिक स्तनकलस से कह दो कि जब २ चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा भङ्ग करे तब तब तुम ऐसे श्लोक पढ़ो जिस से उस का जी और भी फिर जाय। २५

राक्षस।—हां, तब?

करभक।—तब मैं ने पटने में जाकर स्तनकलस से आप का सन्देसा कह दिया।

राक्षस।—तब ?

करभक।—इस के पीछे नन्दकुल के विनाश से दुःखी लोगों का जी बहलाने के हेतु चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में कौमुदी-महोत्सव होने की डौंडी पिटा दी और उस को बहुत दिन
५ से बिछुड़े हुए मित्रों के मिलाप की भांति पुर के निवासियों ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्नेह से मान लिया।

राक्षस।—(आंसू भर कर) हा देव नन्द!

यदपि उदित कुमुदन सहित, पाइ चांदनी चन्द।
तदपि न तुम बिन लसत है, नृपससि! जगदानन्द॥

१० हा, फिर क्या हुआ?

करभक।—तब चाणक्य दुष्ट ने सब लोगों के नेत्र के परमानन्ददायक उस उत्सव को रोक दिया और उसी समय स्तनकलस ने ऐसे ऐसे श्लोक पढ़े कि राजा का भी मन फिर जाय।

१५ राक्षस।—वाह मित्र स्तनकलस, वाह क्यौं न हो! अच्छे समय में भेदबीज बोया है, फल अवश्य होगा। क्यौंकि—

नृप रूठे अचरज कहा, सकल लोग जा सङ्ग।
छोटे हू मानैं बुरो परे रंग में भङ्ग॥

मलयकेतु।—ठीक है (नृप रूठे यह दोहा फिर पढ़ता है)

२० राक्षस।—हा, फिर क्या हुआ?

करभक।—तब आज्ञाभङ्ग से रुष्ट हो कर चन्द्रगुप्त ने आप की बड़ी प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य से अधिकार ले लिया।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! देखो प्रशंसा कर के राक्षस
२५ में चन्द्रगुप्त ने अपनी भक्ति दिखायी।

भागुरायण।—गुण प्रशंसा से बढ़ कर चाणक्य का अधिकार लेने से।

राक्षस।—क्यों जी, एक कौमुदीमहोत्सव के निषेध ही से चाणक्य चन्द्रगुप्त में बिगाड़ हुआ कि कोई और कारण भी है?

मलयकेतु।—क्यों मित्र भागुरायण! अब और बैर में यह क्या फल निकालैंगे? ५

भागुरायण।—यह फल निकाला है कि चाणक्य बड़ा बुद्धिमान् है, वह व्यर्थ चन्द्रगुप्त को क्रोधित न करावैगा और चन्द्रगुप्त भी उस की बातैं जानता है, वह भी बिना बात चाणक्य का ऐसा अपमान न करैगा, इससे उन लोगों में बहुत झगड़े से जो बिगाड़ होगा तो पक्का होगा। १०

करभक।—आर्य्य! और भी कई कारण है।

राक्षस। कौन?

करभक।—कि जब पहिले यहां से राक्षस और कुमार मलयकेतु भागे तब उस ने क्यों नहीं पकड़ा?

राक्षस।—(हर्ष से) मित्र शकटदास! अब तो चन्द्रगुप्त हाथ में आ जायगा। १५

शकटदास।—अब चन्दनदास छूटैगा, और आप कुटुम्ब से मिलेंगे, वैसे ही जीवसिद्धि इत्यादि लोग क्लेश से छूटैंगे।

भागुरायण। (आप ही आप) हां, अवश्य जीवसिद्धि का क्लेश छूटा। २०

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! अब मेरे हाथ चन्द्रगुप्त आवैगा, इस में इन का क्या अभिप्राय है?

भागुरायण।—और क्या होगा? यही होगा कि यह चाणक्य से छूटे चन्द्रगुप्त के उद्धार का समय देखते हैं*।

---

* राक्षस ने तो "चन्द्रगुप्त हाथ में आवैगा" इस आशय से कहा था कि चन्द्रगुप्त जीता जायगा पर भागुरायण ने भेद कराने को मलयकेतु को उस का उलटा अर्थ समझाया।

राक्षस।—अजी, अब अधिकार छिन जाने पर वह ब्राह्मण कहा है ?

करभक।—अभी तो पटने ही में है।

राक्षस।—( घबडा कर ) हैं! अभी वहीं है ? तपोवन नहीं चला गया ? या फिर कोई प्रतिज्ञा नहीं की ?

करभक।- अब तपोवन जायगा —ऐसा सुनते हैं।

राक्षस।—(घबडा कर ) शकटदास, यह बात तो काम की नहीं,

देव नन्द को नहि सह्यौ जिन भोजनअपमान।
सो निज कृत नृप चन्द की बात न सहिहै जान॥

मलयकेतु। मित्र भागुरायण ! चाणक्य के तपोवन जाने वा फिर प्रतिज्ञा करने मे कौन कार्यसिद्धि निकाली है ?

भागुरायण।—कुमार ! यह तो कोई कठिन बात नहीं है, इस का आशय तो स्पष्ट ही है कि चन्द्रगुप्त से जितनी दूर चाणक्य रहैगा उतनी ही कार्यसिद्धि होगी।

शकटदास। अमात्य ! आप व्यर्थ सोच न करैं, क्योंकि देखैं

सबहि भाँति अधिकार लहि, अभिमानी नृप चन्द।
नहि सहिहै अपमान अब, राजा होइ स्वच्छन्द॥
तिमि चाणक्यहु पाइ दुख एक प्रतिज्ञा पूरि।
अब दूजो करिहै न कछु उद्यम निज मद चूरि॥

राक्षस।- ऐसाही होगा। मित्र शकटदास ! जाकर करभक का डेरा इत्यादि दो।

शकटदास।—जो आज्ञा।

( करभक को लेकर जाता है )

राक्षस।—इस समय कुमार से मिलने की इच्छा है।

मलयकेतु।—(आगे बढ कर ) मै आप ही आप से मिलने को आया हूँ।

राक्षस।- (सम्भ्रम से उठ कर) अरे कुमार आप ही आ गए! आइए, इस आसन पर बैठिए।

मलयकेतु।—मैं बैठता हूँ आप विराजिए।

(दोनों बैठते हैं)

मलयकेतु।—इस समय सिर की पीड़ा कैसी है? ५

राक्षस।—जब तक कुमार के बदले महाराज कह कर आप को नहीं पुकार सकते तब तक यह पीड़ा कैसे छूटेगी*।

मलयकेतु।—आप ने जो प्रतिज्ञा की है तो सब कुछ होईगा। परन्तु सब सेना सामन्त के होते भी अब आप किस बात का आसरा देखते हैं? १०

राक्षस।—किसी बात का नहीं, अब चढ़ाई कीजिए।

मलयकेतु।—अमात्य! क्या इस समय शत्रु किसी सङ्कट में है?

राक्षस।—बड़े।

मलयकेतु।—किस सङ्कट में? १५

राक्षस।—मन्त्रीसङ्कट में।

मलयकेतु।—मन्त्रीसङ्कट तो कोई सङ्कट नहीं है।

राक्षस।—और किसी राजा को न हो तो न हो, पर चन्द्रगुप्त का तो अवश्य है।

मलयकेतु।—आर्य! मेरी जान में चन्द्रगुप्त को और भी नहीं है। २०

राक्षस।—आप ने कैसे जाना कि चन्द्रगुप्त को मन्त्रीसङ्कट सङ्कट नहीं है?

मलयकेतु।—क्योंकि चन्द्रगुप्त के लोग तो चाणक्य के कारण उस से उदास रहते हैं, जब चाणक्य ही न रहैगा तब उस के सब कामों को लोग और भी सन्तोष से करैंगे। २५

---

* अर्थात् चन्द्रगुप्त को जीत कर जब आप को महाराज बना लेंगे तब स्वस्थ होंगे।

राक्षस।—कुमार, ऐसा नही है, क्योंकि यहा दो प्रकार के लोग है—एक चन्द्रगुप्त के साथी, दूसरे नन्दकुल के मित्र, उन मे जो चन्द्रगुप्त के साथी है उन को चाणक्य ही से दु:ख था कुछ नन्दकुल के मित्रों को नहीं, क्योंकि वह लोग तो यही सोचते है कि इसी कृतघ्न चन्द्रगुप्त ने राज के लोभ से अपना पितृकुल नाश किया है, पर क्या करें उन का कोई आश्रय नही है इस से चन्द्रगुप्त के आसरे पडे है, जिस दिन आप को शत्रु के नाश मे और अपने पक्ष के उद्धार में समर्थ देखैंगे उसी दिन चन्द्रगुप्त को छोड कर आप से मिल जायगे, इस के उदाहरण हमी लोग है।

मलयकेतु।—आर्य्य! चन्द्रगुप्त के हारने का एक यही कारण है कि कोई और भी है?

राक्षस।—और बहुत क्या होंगे एक यही बडा भारी है।

मलयकेतु।—क्यों आर्य्य! यही क्या प्रधान है? क्या चन्द्रगुप्त और मन्त्रियों से आप अपना काम करने मे असमर्थ है?

राक्षस।—निरा असमर्थ है।

मलयकेतु।—क्यो?

राक्षस।—यों कि जो आप राज्य सम्भालते है या जिन का राज राजा और मन्त्री दोनों करते हैं वह राजा ऐसे हों तो हो, परन्तु चन्द्रगुप्त तो कदापि ऐसा नही है। चन्द्रगुप्त एक तो दुरात्मा है दूसरे वह तो सचिव ही के भरोसे सब काम करता है, इस से वह कुछ व्यवहार जानता ही नही तो फिर वह सब काम कैसे कर सकता है? क्योंकि—

लक्ष्मी करत निवास अति, प्रबल सचिव नृप पाय।
पै निज बाल-सुभाव सों, इकहि तजत अकुलाय॥

और भी—

जो नृप बालक सो रहत, सदा सचिव के गोद।
बिन कछु जग देखे सुने, सो नहि पावत मोद॥

मलयकेतु।—(आप ही आप) तो हम अच्छे हैं, कि सचिव के अधिकार में नहीं (प्रकाश) अमात्य! यद्यपि यह ठीक है तथापि जहां शत्रु के अनेक छिद्र हैं तहां एक इसी सिद्धि से सब काम न निकलैगा। 5

राक्षस।—कुमार के सब काम इसी से सिद्ध होंगे। देखिए,
चाणक्य को अधिकार छूट्यौ चन्द्र है राजा नए।
पुर नन्द में अनुरक्त तुम निज बल सहित चढ़ते भए॥ 10
जब आप हम—(कह कर लज्जा से कुछ ठहर जाता है)
तुव बस सकल उद्यम सहित रन मति करी।
वह कौन सी नृप! बात जो नहि सिद्धि ह्वै है ता घरी॥

मलयकेतु।—अमात्य! जो अब आप ऐसा लड़ाई का समय देखते हैं तो देर कर के क्यों बैठे हैं? देखिए— 15

इन को ऊंचो सीस है, वाको उच्च करार।
श्याम दोऊ वह जल स्रवत, ये गण्डन मधु धार॥
उतै भँवर को शब्द इत, भँवर करत गुंजार।
निज सम तेहि लखि नासि हैं, दन्तन तोरि कछार॥
सीस सोन सिन्दूर सों, ते मतङ्ग बल दाप। 20
सोन सहज ही सोखि हैं, निश्चय जानहु आप॥*

और भी।

गरजि गरजि गम्भीर रव, बरसि बरसि मधुधार।
सत्रु नगर गज घेरिहैं, घन जिमि बिबिध पहार॥
(शस्त्र उठाकर भागुरायण के साथ जाता है) 25

* पटना घेरने में सोन उतर कर जाना था।

राक्षस।—कोई है?

(प्रियम्वदक आता है।)

प्रियम्वदक।—आज्ञा!

राक्षस।—देख तो द्वार पर कौन भिक्षुक खड़ा है?

५ प्रियम्वदक।—जो आज्ञा [बाहर जा कर फिर आता है
अमात्य! एक क्षपणक भिक्षुक।

राक्षस।—(असगुन जान कर आप ही आप) पहिले ही
क्षपणक का दर्शन हुआ।

प्रियम्वदक।—जीवसिद्धि है।

१० राक्षस।—अच्छा, बोला कर ले आ।

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा (जाता है)

(क्षपणक आता है)

क्षपणक।—पहिले कटु परिणाम मधु औषध सम उपदेस।
मोह व्याधि के वैद्य गुरु, तिनको सुनहु निदेस॥

(पास जाकर) उपासक! धर्म लाभ हो!

१५ राक्षस—जोतिषी जी, बताओ, अब हम लोग प्रस्थान किस
दिन करें?

क्षपणक।—(कुछ सोच कर) उपासक! मुहूर्त्त तो देखा।
आज भद्रा तो पहर पहिले ही छूट गई है और तिथि भी
सम्पूर्णचन्द्रा पौर्णमासी है और आप लोगों को उत्तर से
२० दक्षिण जाना है और नक्षत्र भी दक्षिण ही है।
अथये सूरहि चन्द के, उदये गमन प्रशस्त।*
पाइ लगन बुध केतु तौ, उदयो हू भो अस्त॥

---

* भद्रा छूट गई अर्थात कल्याण को तो आप ने जब चन्द्रगुप्त का पक्ष छोड़ा तभी छोड़ा और सम्पूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी है अर्थात चन्द्रगुप्त का प्रताप पूर्ण व्याप्त है। उत्तर नाम प्राचीन पक्ष छोड़ कर दक्षिण अर्थात यम की दिशा को जाना है। नक्षत्र दक्षिण है अर्थात आप का वाम (विरुद्ध पक्ष) नक्षत्र और आप का दक्षिण पक्ष [मलयकेतु] नक्षत्र [बिना क्षत्र के] है। अथए इत्यादि, तुम जो सूर हो उसकी

राक्षस।—अजी, पहिले तो तिथि ही नही शुद्ध है।

क्षपणक।— उपासक !

एक गुनी तिथि होत है, त्यौ चौगुन नक्षत्र।
लगन होत चौंतिस गुनो, यह भाखत सब पत्र॥
लगन होत ह शुभ लगन, छोड़ि क्रूर ग्रह एक।
जाहु चन्द बल देखि कै, पावहु लाभ अनेक॥ ×

राक्षस।—अजी, तुम और जोतिषियों से जा कर झगड़ो॥

क्षपणक।—आप ही झगड़िये, मै जाता हूं।

राक्षस।—क्या आप रूस तो नही गए?

क्षपणक।—नही, तुम से जोतिषी नही रूसा है। १०

राक्षस।—तो कौन रूसा है?

क्षपणक।—(आप ही आप) भगवान्, कि तुम अपना पक्ष छोड़ कर शत्रु का पक्ष ले बैठे हो (जाता है)।

राक्षस।—प्रियम्बदक! देख तो कौन समय है।

प्रियम्बदक।—जो आज्ञा (बाहर से हो आता है) आर्य्य! सूर्य्यास्त होता है। १५

---

बुद्धि क अस्त के समय और चन्द्रगुप्त के उदय के समय जाना अच्छा है अर्थात् चाणक्य की ऐसे समय में जय होगी। लग्न अर्थात कारण भाव में बुध चाणक्य पडा है इससे कतु अर्थात् मलयकेतु का उदय भी है तो भी अस्त ही होगा। अर्थात् इस युद्ध में चन्द्रगुप्त जीतैगा और मलयकेतु हारैगा। सूर अथए—इस पद से जीवसिद्धि, ने अमगल भी किया। आश्विन पूर्णिमा तिथि, भरणी नक्षत्र, गुरुवार, मेप के चन्द्रमा मीन लग्न में उस ने यात्रा बतलायी। इस में भरणी नक्षत्र गुरुवार, पूर्णिमा तिथि यह सब दक्षिण की यात्रा में निषिद्ध है। फिर सूर्य्य मृत है चन्द्र जीवित है यह भी बुरा है। लग्न में मीन का बुध पडने से नीच का होने से बुरा है। यात्रा में नक्षत्र दक्षिण होने ही से बुरा है।

× अर्थात मलयकेतु का साथ छोड दो तो तुम्हारा भला हो। वास्तव में चाणक्य के मित्र होने से जीवसिद्धि ने साइत भी उलटी दी। ज्योतिष क अनुसार अत्यन्त क्रूर वेला, क्रूर ग्रह वेध में युद्ध आरम्भ होना चाहिये। उसके विरुद्ध सौम्य समय में युद्धयात्रा कही, जिसका फल पराजय है।

राक्षस।—( आसन से उठ कर और देख कर ) अहा! भगवान् सूर्य्य अस्ताचल को चले—

जब सूरज उदयो प्रबल, तेज धारि आकास।
तब उपबन तरुवर सबै, छायाजुत भे पास॥
दूर परे ते तरु सबै, अस्त भये रवि ताप।
जिमि धन बिन स्वामिहि तजै, भृत्य स्वारथी आप॥

( दोनों जाते हैं )

इति चतुर्थोऽङ्क।

* भाषा के साथ।

# पंचम अंक

( हाथ मे मोहर, गहिने की पेटी और पत्र लेकर सिद्धार्थक आता है )

सिद्धार्थक।—अहाहा !

देशकाल के कलश से, सिंची बुद्धि-जल जौन।
लता नीति चाणक्य की, बहु फल दैहै तौन॥ ५

अमात्य राक्षस के मोहर का, आर्य्य चाणक्य का लिखा हुआ यह लेख और मोहर तथा यह आभूषण की पेटिका लेकर मै पटने जाता हूं ( नेपथ्य की ओर देख कर ) अरे! यह क्या क्षपणक आता है ? हाय हाय ! यह तो बुरा असगुन हुआ। तो मै सूरज को देख कर इस का दोष छुड़ा लूं। १०

( क्षपणक आता है )

क्षपणक।—नमो नमो अर्हन्त को, जो निज बुद्धि प्रताप।
लोकोत्तर की सिद्धि सब, करत हस्तगत आप॥

सिद्धार्थक।—भदन्त ! प्रणाम।

क्षपणक।—उपासक ! धर्म्म लाभ हो ( भली भांति देख कर ) आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग कर रक्खा है। १५

सिद्धार्थक।—भदन्त ! तुम ने कैसे जाना ?

क्षपणक।—इस मे छिपी कौन बात है ? जैसे समुद्र मे नाव पर सब के आगे मार्ग दिखानेवाला मांझी रहता है, वैसे ही तेरे हाथ मे यह लखौटा है। २०

सिद्धार्थक।—अजी भदन्त ! भला यह तुम ने ठीक जाना कि मैं परदेश जाता हू, पर यह कहो कि आज दिन कैसा है ?

क्षपणक ।—( हंस कर ) वाह श्रावक वाह ! तुम मूंड मुड़ा कर भी नक्षत्र पूछते हो ?

सिद्धार्थक ।—भला अब क्या बिगड़ा है ? कहते क्यों नहीं दिन अच्छा होगा जायगे, न अच्छा होगा फिर आवैंगे ।

५ क्षपणक ।—चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो, मलयकेतु के कटक से बिना मोहर भए कोई जाने नहीं पाता ।

सिद्धार्थक ।—यह नियम कब से हुआ ?

क्षपणक ।—सुनो, पहिले तो कुछ भी रोक टोक नहीं थी पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम १० हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाय न आवै । इस से जो तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो, क्योंकि पीछे से तुम्हें हाथ पैर बंधवाना पड़ै ।

सिद्धार्थक ।—क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के १५ अन्तरङ्ग खेलाड़ी मित्र हैं ? हमैं कौन रोक सकता है ?

क्षपणक ।—चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओगे ।

सिद्धार्थक ।—भदन्त ! क्रोध मत करो, कहो कि काम सिद्ध हो ।

२० क्षपणक ।—जाओ, काम सिद्ध होगा, हम भी पटने जाने हेतु मलयकेतु से मोहर लेने जाते हैं ।

( दोनों जाते हैं )

॥ इति प्रवेशक ॥

( भागुरायण और सेवक आते हैं )

२५ भागुरायण ।—( आपही आप ) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है ।

कहूं बिरल कहु सघन कहु, विफल कहूं फलवान।
कहु कृस, कहु अति थूल कछु, भेद परत नहि जान॥
कहूं गुप्त अति ही रहत, कबहूं प्रगट लखात।
कठिन नीति चाणक्य की, भेद न जान्यो जात॥

(प्रगट) भासुरक! मलयकेतु से मुझे क्षण भर भी दूर रहने में दुःख होता है इस से यही बिछौना बिछा तो बैठे। ५

सेवक। जो आज्ञा—बिछौना बिछा है, विराजिए।

भागुरायण।—(आसन पर बैठ कर) भासुरक! बाहर कोई मुझ से मिलने आवे तो आने देना।

सेवक।—जो आज्ञा (जाता है)। १०

भागुरायण।—(आप ही आप करुणा से) राम राम! मलयकेतु तो मुझ से इतना प्रेम करता है, मैं उस का बिगाड़ किस तरह करूंगा? अथवा—

जस कुल तजि अपमान सहि, धन हित परबस होय।
जिन बेच्यो निज प्रान तन, सबै सकत करि सोय॥ १५

(आगे आगे मलयकेतु और पीछे प्रतिहारी आते हैं)

मलयकेतु।—(आप ही आप) क्या करें राक्षस का चित्त मेरी ओर से कैसा है यह सोचते है तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते है, कुछ निर्णय नही होता।

नन्दवंश को जानि के, ताहि चन्द्र की चाह। २०
कै अपनायो जानि निज, मेरो करत निबाह॥
को हित अनहित तासु को, यह नहि जान्यो जात।
तासों जिय सन्देह अति, भेद न कछू लखात॥

[प्रगट] बिजये! भागुरायण कहा हैं देख तो?

प्रतिहारी।—महाराज! भागुरायण वह बैठे हुए आप की सेना के जाने वाले लोगों को राहखर्च और परवाना बांट रहे हैं। २५

मलयकेतु।—विजये! तुम दबे पाव से उधर से आओ, मै पीछे से जाकर मित्र भागुरायण की आखें बन्द करता हूं।

प्रतिहारी।—जो आज्ञा।

५ [दोनों दबे पाव से चलते है और भासुरक आता है]

भासुरक।—[भागुरायण से] बाहर क्षपणक आया है, उस को परवाना चाहिए।

भागुरायण।—अच्छा, यहा भेज दो।

भासुरक।—जो आज्ञा [जाता है]।

१० [क्षपणक आता है]

क्षपणक।—श्रावक को धर्म लाभ हो!

भागुरायण।—[छल से उसकी ओर देख कर] यह तो राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है [प्रगट] भदन्त! तुम नगर में राक्षस के किसी काम से जाते होगे।

१५ क्षपणक।—[कान पर हाथ रख कर छी छी! हम से राक्षस वा पिशाच से क्या काम?

भागुरायण।—आज तुम से और मित्र से कुछ प्रेम कलह हुआ है, पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है?

२० क्षपणक।—राक्षस ने कुछ अपराध नही किया है, अपराधी तो हम है।

भागुरायण।—ह ह ह ह! भदन्त! तुम्हारे इस कहने से तो मुझ को सुनने की और भी उत्कण्ठा होती है।

मलयकेतु।—(आप ही आप) मुझ को भी।

२५ भागुरायण।—तो भदन्त! कहते क्यों नही?

क्षपणक। तुम सुन के क्या करोगे?

भागुरायण।—तो जाने दो, हमैं कुछ आग्रह नही है, गुप्त हो तो मत कहो।

क्षपणक।—नहो उपासक! गुप्त ऐसा नही है, पर वह बहुत बुरी बात है।

भागुरायण।—तो जाओ, हम तुम को परवाना न देंगे।

क्षपणक।—(आप ही आप की भांति) जो यह इतना आग्रह करता है तो कह दे (प्रत्यक्ष) श्रावक! निरुपाय हो कर कहना पड़ा। सुनो–मै पहिले कुसुमपुर मे रहता था, तब सयोग से मुझ से राक्षस से मित्रता हो गई, फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग करा के बिचारे पर्व्वतेश्वर को मार डाला। ५

मलयकेतु।—(आखों मे पानी भर के) हाय हाय! राक्षस ने हमारे पिता को मारा, चाणक्य ने नही मारा। हा! १०

भागुरायण।—हां, तो फिर क्या हुआ?

क्षपणक।—फिर मुझे राक्षस का मित्र जान कर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझ को नगर से निकाल दिया, तब मैं राक्षस के यहा आया, पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझ को ऐसा काम करने कहता है जिस से मेरा प्राण जाय। १५

भागुरायण।—भदन्त! हम तो यह समझते है कि पहिले जो आधा राज देने कहा था, वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म्म किया, राक्षस ने नही किया।

क्षपणक।—(कान पर हाथ रख कर) कभी नही, चाणक्य तो विषकन्या का नाम भी नही जानता, यह घोर कर्म्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है। २०

भागुरायण।—हाय हाय! बड़े कष्ट की बात है। लो, मुहर तो तुम को देते हैं, पर कुमार को भी यह बात सुना दो।

मलयकेतु।—(आगे बढ़ कर) २५

सुन्यो मित्र, श्रुति भेद कर, शत्रु कियौ जो हाल।
पिता मरन को मोहि दुख, दुगुन भयो एहि काल॥

क्षपणक।—( आप ही आप ) मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन लिया तो मेरा काम हो गया ( जाता है )।

मलयकेतु।—( दांत पीस कर ऊपर देख कर ) अरे राक्षस !

जिन तोपै विश्वास करि, सौंप्यौ सब धन धाम।
५ ताहि मारि दुख दै सबन, साचो किय निज नाम॥

भागुरायण।—(आप ही आप ) आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि "अमात्य राक्षस के प्राण की सर्वथा रक्षा करना" इस से अब बात फेरैं। ( प्रकाश ) कुमार ! इतना आवेग मत कीजिये। आप आसन पर बैठिए तो मैं कुछ निवेदन करू।

१० मलयकेतु।—मित्र क्या कहते हो ? कहो ( बैठजाता है )।

भागुरायण।—कुमार ! बात यह है कि अर्थशास्त्रवालों की मित्रता और शत्रुता अर्थ ही के अनुसार होती है, साधारण लोगों की भांति इच्छानुसार नहीं होती। उस समय सर्वार्थसिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था तब देव पर्व्वतेश्वर ही इस कार्य में कंटक थे तो उस कार्य्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं। आप देखिए—

मित्र शत्रु ह्वै जात हैं, शत्रु करहि अति नेह।
अर्थ नीति बस लोग सब, बदलहि मानहु देह॥

२० इस से राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिये। और जब तक नन्दराज्य न मिलै तब तक उस पर प्रकट स्नेह ही रखना नीति सिद्ध है, राऊ मिलने पर कुमार जो चाहैंगे करैंगे।

मलयकेतु।—मित्र ! ऐसा ही होगा। तुम ने बहुत ठीक सोचा
२५ है। इस समय इस के वध करने से प्रजागण उदास हो जायगे और ऐसा होने से जय में भी सन्देह होगा।

( एक मनुष्य आता है )

मनुष्य ।—कुमार की जय हो ! कुमार के कटकद्वार के रक्षाधिकारी दीर्घचक्षु ने निवेदन किया है कि 'मुद्रा लिये बिना एक पुरुष कुछ पत्र सहित पकड़ा गया है सो उस को एक बेर आप देख लें ।'

भागुरायण । अच्छा, उस को ले आओ । ५

पुरुष ।—जो आज्ञा ।

(जाता है और हाथ बंधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धार्थक । (आप ही आप)

गुन पै रिझवत, दोस सों, दूर बचावत जौन ।
स्वामि भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन ॥ १०

पुरुष ।—(हाथ जोड़ कर) कुमार ! यही मनुष्य है ।

भागुरायण ।—(अच्छी तरह देख कर) यह क्या बाहर का मनुष्य है या यहीं किसी का नौकर है ?

सिद्धार्थक ।—मैं अमात्य राक्षस का पासवर्ती सेवक हूं ।

भागुरायण ।—तो तुम क्यों मुद्रा लिये बिना कटक के बाहर जाते थे ? १५

सिद्धार्थक ।—आर्य्य ! काम की जल्दी से ।

भागुरायण ।—ऐसा कौन काम है जिस के आगे राजाज्ञा को भी कुछ मोल नहीं गिना ?

सिद्धार्थक ।—(भागुरायण के हाथ में लेख देता है) । २०

भागुरायण ।—(लेख लेकर देख कर) कुमार ! इस लेख पर अमात्य राक्षस की मुहर है ।

मलयकेतु ।—ऐसी तरह से खोल कर दो कि मुहर न टूटे ।

भागुरायण ।—(पत्र खोल कर मलयकेतु को देता है) ।

मलयकेतु ।—(पढ़ता है) स्वस्ति । यथा स्थान में कहीं से कोई किसी पुरुष विशेष को कहता है । हमारे विपक्ष को निराकरण कर के सच्चे मनुष्य ने सचाई दिखलाई । २५

अब हमारे पहिले के रक्खे हुए हमारे हितकारी चरो को भी जो जो देने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना। यह लोग प्रसन्न होगे तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भाति अपने उपकारी की सेवा करैंगे। सच्चे लोग कही नही भूलते तो भी हम स्मरण कराते है। इन मे से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते हैं और कोई राज चाहते है। हम को सत्यवादी ने जो तीन अलङ्कार भेजे सो मिले। हम ने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना। और जबानी हमारे अत्यन्त
१० प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुन लेना*।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! इस लेख का आशय क्या है?

भागुरायण।—भद्र सिद्धार्थक! यह लेख किस का है?

सिद्धार्थक।—आर्य्य! मै नही जानता।

भागुरायण।—धूर्त! लेख लेकर जाता है और यह नही
१५ जानता कि किसने लिखा है, और सदेसा किस से कहैगा?

सिद्धार्थक।—(डरते हुए की भाति) आप से।

भागुरायण।—क्यों रे! हम से?

सिद्धार्थक।—आप ने पकड़ लिया। हम कुछ नही जानते
२० कि क्या बात है।

भागुरायण।—(क्रोध से) अब जानैगा। भद्र भासुरक! इस को बाहर ले जाकर जब तक यह सब कुछ न बतलावै तब तक खूब मारो।

पुरुष।—जो आज्ञा (सिद्धार्थक को बाहर ले कर जाता है
२५ और हाथ मे एक पेटी लिए फिर आता है) आर्य्य!

---

*यह वही लेख है जिस को चाणक्य ने शकटदास से धोखा देकर लिखवाया था और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर करके सिद्धार्थक को दिया था।

उस को मारने के समय उस के बगल में से यह मुहर की हुई पेटी गिर पड़ी ।

भागुरायण ।—( देख कर ) कुमार ! इस पर भी राक्षस की मुहर है ।

मलयकेतु ।—यही लेख अशून्य करने को होगी । इस की भी मुहर बचा कर हम को दिखलाओ ।

भागुरायण ।—( यही खोल कर दिखलाता है ) ।

मलयकेतु ।—अरे ! यह तो वही सब आभरण हैं जो हम ने राक्षस को भेजे थे * । निश्चय यह चन्द्रगुप्त को लिखा है ।

भागुरायण ।—कुमार ! अभी सब सशय मिट जाता है । भासुरक ! उस को और मारो ।

रुष ।—जो आज्ञा ( बाहर जाकर फिर आता है × ) आर्य्य ! हमने उसको बहुत मारा है । अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे ।

मलयकेतु ।—अच्छा, ले आओ ।

पुरुष ।—जो कुमार की आज्ञा ( बाहर जा कर सिद्धार्थक को ले कर आता है ) ।

---

* दूसरा अक पढने स यहा की सब कथा खुल जायगी । चाणक्य ने चालाकी कर के चन्द्रगुप्त से पर्व्वतेश्वर के आभरण का दान कराया था और अपने ही ब्राह्मणों को दिलवाया था । उन्हीं लोगो ने राक्षस के हाथ वह आभरण बेचे जिस के विषय में कि इस पत्र में लिखा है " हम को सत्यवादी ने तीन अलकार भेजे सो मिले । " जिस में मलयकेतु को विश्वास हो कि पर्व्वतेश्वर के आभरण राक्षस ने मोल नही लिए कि तु चन्द्रगुप्त ने उस को भेजे और मलयकेतु ने कचुकी के द्वारा जो आभरण राक्षस को भेजे थे वही इस पेटी में बन्द थे, जिस में मलयकेतु को यह सन्देह हो कि राक्षस इन आभरणो को चन्द्रगुप्त को भेजता है ।

× ऐसे अवसर पर नाटक खेलनेवालों को उचित है कि बाहर जाकर बहुत जल्द न चले आवै, और वह जिस कार्य्य के हेतु गए हैं नेपथ्य में उसका अनुकरण करैं । जैसा भासुरक को सिद्धार्थक के मारने के हेतु भेजा गया है तो उस को नेपथ्य में मारने का सा कुछ शब्द कर कै तब फिर आना चाहिए ।

प्रति॰।—( मलयकेतु के पैरों पर गिर कर ) कुमार ! हम
भय दान दीजिए।

—भद्र ! उठो, शरणागत जन यहा सदा अभय हैं।
न का वृत्तान्त कहो।

राक्ष॰।—( उठ कर ) सुनिए। मुझ को अमात्य राक्षस ने
दे कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा था।

—जबानी क्या कहने कहा था वह कहो।

—कुमार ! मुझ को अमात्य राक्षस ने यह कहने
कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्म्मा,
पति सिंहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष, * सिन्धु
ा सिन्धुसेन और पारसीक पालक मेघाक्ष इन पांच

---

क राजा के विषय में मुद्राराक्षस के कवि को भ्रम हुआ है यह सम्भव
रंगिणी में कोई राजा पुष्कराक्ष नाम का नहीं है। जिस समय में
गुप्त राज्य करता था उस समय कश्मीर में विजय जयेन्द्र सन्धिमान
सेन इन्हीं राजों के होने का सम्भव है। कनिंगहम लैसन, विलसन
मत में सो बरस के लगभग का अन्तर है, इसी से मैने यहा कई
ना लिखा। इन राजाओं के जीवनइतिहास में पढने तक किसी का
है और न चन्द्रगुप्त के काल की किसी घटना से उन से सम्बन्ध है।
लिखा हो यह सम्भव हो सकता है। क्योकि मेघवाहन पहले
ा था फिर कश्मीर का राजा हुआ। भ्रम से इस को पारसीकराज
या सिल्यूकस का शैलाक्ष अनुवाद न कर के मेघाक्ष किया हो
सेन से सिन्धुसेन निकाला हो। भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमा पर
क मरने से बडा ही गडबड था। इस से कुछ शुद्ध वृत्तान्त नहीं
कि कवि ने जो कुछ उस समय सुना लिख दिया। वा यह भी
देश और नाम केवल काव्यकल्पना हो। इतिहासों से यह भी
गास्थनिस (Megasthenes) नामक एक राजदूत सिल्यूकस का
आया था। सम्भव है कि इसी का नाम मेघाक्ष लिखा हो। यदि
हिसाब लीजिए तो एक दूसरी ही लट मिलती है। इस के मत से
ीते महाभारत का युद्ध हुआ। फिर १०१ बरस में तीन गोनर्द

राजाओं से आप से पूर्व्व मे सन्धि हो चुकी है। इस मे पहिले तीन तो मलयकेतु का राज चाहते है और बाकी दो खजाना और हाथी चाहते हैं। जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़ कर मुझ को प्रसन्न किया उसी तरह इन लोगों को भी प्रसन्न करना चाहिए। यही राज-सन्देश है।

मलयकेतु।—( आप ही आप ) क्या चित्रवर्म्मादिक भी हमारे द्रोही है? तभी राक्षस मे उन लोगों की ऐसी प्रीति है। ( प्रकाश ) विजये। हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते है। १

---

हुए, अब ७५४ ग० क० समबत हुआ। इस के पीछे १२६६ बरस क राजाओ का वृत्त नहीं मालूम। ( २०२० ग० क० ) इस समय के ८६७ वर्ष पीछे उत्पलाक्ष, हिरण्याक्ष और हिरण्यकुल इस नाम के राजा हुए। २७९० ग० क० क पास इन का राज आरम्भ हुआ और २८८७ ग० क० तक रहा। इस वर्ष गत कलि ४९८२ इस से चन्द्रगुप्त का समय २८०० ग० क० हुआ तो उत्पलाक्ष हिरण्य वा हिरण्याक्ष राजा राजतरगिणी क मत से चन्द्रगुप्त के समय में थे। ( राजतरगिणी प्र० त० २८७ श्लोक से )।

"उत्पलाक्ष इति ख्याति पेशलाक्षतथा गत ।<br>
तत्सूनुस्त्रि शत सार्द्धान् वर्षाणामवशान्महीम् ॥<br>
तस्यसूनुर्हिरण्याक्ष स्वनामाकपुर व्यधात् ।<br>
क्षमा सप्तत्रि शतवर्षान्सप्तमासाश्च भुक्तवान ॥<br>
हिरण्यकुलइत्यस्थ हिरण्याक्षस्य चात्मज<br>
षष्टि षष्टि च मुकुलस्तत्सूनुरभवन समा ॥<br>
अथम्लेच्छगणाकीर्णे मडले चडचेष्टित ।" इत्यादि।

यह सम्बन्ध दो तीन बातो से पष्ट होता है। एक तो यह स्पष्ट सम्भव है कि उत्पलाक्ष का पुष्कराक्ष हो गया हो। दूसर उन्हीं लोगो के समय उस प्रान्त में म्लेच्छो का आना लिखा है। तीसरे इसी समय से गान्धार, बर्बर आदि देशो के लोगो का व्यवहार यहा प्रचलित हुआ। इन बातो से निश्चित होता है कि यही उत्पलाक्षवा हिरण्याक्ष पुष्कराक्ष नाम से लिखा है, विरोध केवल इतना ही है कि राजतरगिणी में चन्द्रगुप्त का वत्तान्त नहीं है।

।—जो आज्ञा (जाता है)।

ह परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ
ता की मुद्रा मे एक पुरुष के साथ दिखलाई पड़ता
)

—(आप ही आप) चन्द्रगुप्त की ओर के बहुत लोग
री सेना मे भरती हो रहे है इस से हमारा मन शुद्ध
है। क्योकि—

साध्य ते अन्वित अरु बिलसत निज पच्छहि।
साधन साधक जो नहि हुअत बिपच्छहि॥
पुनि आपु असिद्ध सपच्छ बिपच्छहु मे सम।
कछु नहि निज पच्छ माहि जाको है सगम॥
ति ऐसे साधनन कों अनुचित अगीकार करि।
भाति पराजित होत है बादी लों बहुबिधि बिगरि+॥

---

पाचवें अक में चार बेर दृश्य बदना है। पहिले प्रवेशक, फिर भागुरायण
र तीसरा यह राक्षस का प्रवेश, चौथा राक्षस का फिर मलयकेतु क पास
नाटको के अनुसार चार दृश्या वा गर्भाको में इस को बाट सकते ह यथा
राजमार्ग, दूसरा युद्ध क डेरा के बीच में मार्ग, और तीसरा राक्षस का
मलयकेतु का डेरा।

यशास्त्र में अनुमान के प्रकरण में किसी पदाथ को दूसर पदार्थ के साथ
देख कर व्याप्तिज्ञान होता है कि जहा पहला पदार्थ रहता है वहा दूसरा
होगा। जैसा रसोई के घर में अग्नि के साथ धए को बराबर देख कर
होता है कि जहा धुआ होगा वहा अग्नि भा अवश्य होगा। इसी भाति और
, दूसरे पदार्थ का देखो ते। पहले पदाथ का ज्ञान होता है कि वहा भी अग्नि
। इसी को अनुमिति कहते है। जिस की बाद में सिद्धि करना हो उस
हते हैं, जैसे अग्नि। जिस के द्वारा सिद्ध हो उसे हेतु और साधन कहते ह
जहा साध्य का रहना निश्चित हो वह सपक्ष कहलाता है, जैसे पाकशाला।
मिति से सा य की सिद्धि करनी हो वह पक्ष कहलाता है जैसे पर्वत।
का निश्चय अभाव हो वह विपक्ष कहलाता है, जैसे जलाशय। यहा पर
नी न्यायशास्त्र का जानकारी का परिचय देने को यह छ द बनाया है।

वा जो लोग चन्द्रगुप्त से उदास हो गए हैं वही लोग इधर मिले है, मै व्यर्थ सोच करता हूं। (प्रगट) प्रियम्बदक ! कुमार के अनुयायी राजा लोगों से हमारी ओर से कह दो कि अब कुसुमपुर दिन दिन पास आता जाता है, इस से सब लोग अपना सेना अलग अलग कर के जो जहा नियुक्त हों वहा सावधानी से रहै । ५

आगे खस अरु मगध चलै जय ध्वजहि उड़ाए।
यवन और गंधार रहै मधि सैन जमाए॥
चेदि हून सक राज लोग पीछे सो धावहि।
कौलूतादिक नृपनि कुमारहि घेरे आवहि * ॥ १०

---

जैसे न्यायशास्त्र में वाद करनेवाला पूर्वोक्त साधनादिको को न जान कर स्वपक्ष स्थापन में असमर्थ हो कर हार जाता है, वैसे ही जो राजा (भावक) सैना आदि साधन से अन्वित है और अपने पक्ष को जानता है, विपक्ष से बचता है वह जय पाता है। जो आप साध्यो (सैना कोश आदिको) से हीन (असिद्ध) है और जिसको शत्रु मित्र का ज्ञान नहीं है और जो अपने पक्ष को नहीं समझता और अनुचित साधनो का [अर्थात शत्रु से मिले हुए लोगो का] अंगीकार करता है, वह हारता है। यह राक्षस ने इसी विचार पर कहा कि चन्द्रगुप्त के लोग इधर बहुत मिले है इस से हारने का सन्देह है [दर्शनो का थोड़ा सा वर्णन पाठकगण को जानकारी के हेतु पीछे किया जायगा]।

* खस हिमालय के उत्तर की एक जाति। कोई विद्वान तिब्बत, कोई लद्दाख को खस देश मानते है। यवन शब्द से मुख्य तात्पर्य्य यूनानप्रान्त के देशो से है (Bactria, Lovia, Greek) परन्तु पश्चिम की विदेशी और अन्यधर्मी जाति मात्र को मुहाविरे में यवन कहते हैं। गांधार जिस का अपभ्रंश कन्दहार है। चेदि देश बुन्देलखण्ड, कोई कोई चन्देरी के छोटे शहर को चेदि देश की राजधानी कहते हैं। हून देश योरोप के तत्काल के किसी असभ्य देश का नाम (Huns Hungary) कोई विद्वान् मध्यएशिया में हून देश मानते है। शक को कोई विद्वान् तातार देश कहते हैं और कोई (Scythians) को शक कहते हैं। कोई बलूचिस्तान के पास के देशो को शक देश मानते हैं। कौलूत देश के राजा चित्रवर्मादिक राक्षस के बड़े विश्वस्त थे इसी से कुमार की आरक्षा इनको दी थी। इन को राजाओं के

प्रियम्बदक ।—अमात्य की जो आज्ञा ( जाता है ) ।

( प्रतिहारी आता है )

प्रतिहारी ।—अमात्य की जय हो । कुमार अमात्य को देखना चाहते है ।

५ राक्षस ।—भद्र ! क्षण भर ठहरो । बाहर कौन है ?

( एक मनुष्य आता है ) ।

मनुष्य ।—अमात्य ! क्या आज्ञा है ?

राक्षस ।—भद्र ! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हम को आभरण पहराया है तब से उन के सामने नगे अग

१० जाना हम को उचित नही है। इस से जो तीन आभरण मोल लिये है उन में से एक भेज दें ।

---

नाम और देश का कुछ और पता मिलने को हम सिकदर के विजय की बडी बडी पुस्तको को देखै । क्योकि बहुत सी बाते जिन का पता इस देश की पुस्तको से नहीं लगता विदेशी पुस्तकें उन को सहज में बतला देती हैं। इस हेतु यहा तीन अगरेजी पुस्तको से हम थोडा सा अनुवाद करते हैं —( 1 ) Alexander the Great and his successors, ( 2 ) History of Greece ( 3 ) Plutarch s lives of illustrious men VII "सिकदर के सिपाही लोग केवल ऋतु और थकावट ही से नहीं डरे किंतु उन्हो ने यह भी सुना कि गगा छ सौ फुट गहरी और चार मील चौटी है । Ganderites और Praisians के राजगण अस्सी हजार सवार, दो लाख सिपाही छ हजार हाथी और आठ हजार रथ सजे हुए सिकदर से लडने को तैयार हैं । इतनी सेना मगध देश में एकत्र होना कुछ आश्चर्य का बात नहीं क्योंकि ऐन्दाकुतस ( चद्रगुप्त ) ने सिल्यूकस को एक ही बेर पाच सौ हाथी दिए थे और एक बेर छ लाख सैना लेकर सारा हिदुस्तान जीता था। यह गान्दरिटस गाधार और प्रेसिअन फारस प्रात के किसी देश का नाम होगा। हम का इन पाचो राजाओ में कुलूत और मलय इन दो देशो की विशेष चिन्ता है इस हेतु इन देशो का विशेष अन्वेषण कर के आग लिखते हैं ' एक बेर सिकदर [Malli] माल्लि वा मल्लि नामक भारत के विख्यात लडनेवाली जाति से जब वह उन को जीतने को गया था मरते मरते बचा। जब सिकन्दर ने उन लोगो का दुर्ग घेर लिया और दीवार पर के लोगों को अपने शस्त्र से मार डाला तो साहस कर के अकेला दीवार पर चढ कर भीतर कूद पडा और वहा

मनुष्य।—जो अमात्य की आज्ञा। ( बाहर जाता है आभरण लेकर आता है। ) अमात्य! अलङ्कार लीजिए।

राक्षस।—( अलङ्कार धारण कर के ) भद्र! राजकुल में जाने का मार्ग बतलाओ।

प्रतिहारी।—इधर से आइए।

राक्षस।—अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है।

सेवक प्रभु सों डरत सदाही। पराधीन सपने सुख नाही॥
जे ऊंचे पद के अधिकारी। तिन को मनही मन भय भारी॥
सबही द्वेष बड़न सो करही। अनुचित ज्ञान स्वामि को भरही॥
जिमि जे जनमे ते मरैं मिले अवसि बिलगाहि।
तिमि जे अति ऊंचे चढ़ै, गिरि हैं संसय नाहि॥

---

शत्रुओं से ऐसा घिर गया कि यदि उस के सिपाही साथ ही न पहुंचते तो वह टुकड़े २ हो जाता।" यह मल्ली देश ही मुद्राराक्षस का मलय देश है यह संभव होता है। यद्यपि अंगरेजी वाले यह देश कहां था इस का कुछ वर्णन नहीं करते किन्तु हिंदुस्तान से लौटते समय यह देश उन को मिला था, इस से अनुमान होता है कि कहीं बलूचिस्तान के पास होगा। आगे चल कर फिर लिखते हैं "नदियों के मुहाने पर पहुंचने के पीछे उस को एक टापू मिला, जिस को उसने शिलोसतिस Scillcustis लिखा है पर आरियन [आर्य] लोग उस टापू को किलूता Cillutta कहते हैं।" क्या आश्चर्य है कि यही कुलूत हो। वह लोग यह भी लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने छोटेपन में सिकंदर को देखा था और उस के विषय में उस ने यह अनुमति दी थी कि सिकंदर यदि स्वभाव अपने वश मे रखता तो सारी पृथ्वी जीतता। अब इन पुस्तकों से राजाओं के नाम भी कुछ मिलाइए। पर्व्वतेश्वर और बर्व्वर यह दोनों शब्द Barbarian बर्बरियन के कैसे पास हैं। कश्मीरादि देश का राजा जिस के पंजाब अति निकट है, पुष्कराक्ष ग्रीक लोगों के पोरस शब्द के पास है। पुष्करान का पुसकरस और उस से पोरस हुआ हो तो क्या आश्चर्य है। प्युकस्तस वा पुसैतस ( जो सिकन्दर के पीछे पारस का गवर्नर हुआ था ) भी पुष्कराक्ष के पास है किंतु यहां पारस का राजा मेघाक्ष लिखा है। इन राजाओं का ठीक, ठीक ग्रीक नाम था जो देश उन का विशाखदत्त ने लिखा उस को यूनानवाले

प्रतिहारी।—( आगे बढ़ कर ) अमात्य ! कुमार यह बिराजते हैं, आप जाइये।

राक्षस।— अरे, कुमार यह बैठे है।

लखत चरन की ओर हू, तऊ न देखत ताहि।
५ अचल दृष्टि इक ओर ही, रही बुद्धि अवगाहि॥
कर पै धारि कपोल निज, लसत झुको अवनीस।
दुसह काज के भार सो, मनहु नमित भो सीस॥

( * आगे बढ़ कर ) कुमार की जय हो !

मलयकेतु।—आर्य्य। प्रणाम करता हूं। आसन पर बिराजिए।

१० राक्षस।—(बैठता है।)

मलयकेतु। आर्य। बहुत दिनों से हम लोगों ने आप को नही देखा।

राक्षस।—कुमार ! सेना को आगे बढ़ाने के प्रबन्ध में फसने के कारण हम को यह उपालम्भ सुनना पड़ा।

१५ मलयकेतु।—अमात्य ! सेना के प्रयाण का आप ने क्या प्रबन्ध किया है ? मैं भी सुनना चाहता हूं।

राक्षस। कुमार! आपके अनुयायी, राजा लोगों को यह आज्ञा दी है ( आगे खस अरु मगध इत्यादि छन्द पढ़ता है )।

---

उस समय क्या कहते थे यह निर्णय करना बहुत कठिन है। संस्कृत के शब्द भी यूनानी में इतने बदल जाते हैं जिस का कुछ हिसाब नहीं। चन्द्रगुप्त का ऐन्ड्राकोत्तस वा सैन्डाकोटस, पाटलिपुत्र का पालीबोत्रा वा पालीभोत्तरा। तक्षक का टैक्सा इल्स। यही बात यदि हम यूनानी शब्दो को संस्कृत के सादृश्यानुसार अनुवाद करें तो उपस्थित होंगी। अलेकजेन्डर एलेकजेन्दर इत्यादि का फारसी सिकन्दर हुआ। हम यदि इन शब्दो को संस्कृत Sanskritised करै तो अलचेन्द्र वा लक्षेन्द्र वा श्रीकेन्द्र वा श्रीकन्दर वा शिक्षेन्द्र इत्यादि शब्द होंगे। अब कहिए, कहा के शब्द कहां जा पड़े इसी से ठीक ठीक नामग्राम का निर्णय होना बहुत कठिन है। केवल शब्द विद्या के पण्डितो के कुतूहल के हेतु इतना भी लिखा गया।

* यहीं पर चौथा दृश्य आरम्भ होता है।

मलयकेतु।—( आप ही आप ) हां, जाना, जो हमारे नाश करने के हेतु चन्द्रगुप्त से मिले हैं वही हमको घेरे रहैंगे (प्रकाश) आर्य्य, अब कुसुमपुर से कोई आता है या वहा जाता है कि नही ?

राक्षस।—अब यहा किसी के आने जाने से क्या प्रयोजन ! पाच छः दिन मे हम लोग ही वहां पहुंचैगे। ५

मलयकेतु।—[ आप ही आप ] अभी सब खुल जाता है [ प्रगट ] जो यही बात है तो इस मनुष्य को चिट्ठी ले कर आप ने कुसुमपुर क्यों भेजा था ?

राक्षस।—[ देख कर ] अरे ! सिद्धार्थक है ? भद्र ! यह क्या ? १०

सिद्धार्थक।—[ भय और लज्जा नाट्य कर के ] अमात्य ! हम को क्षमा कोजिये। अमात्य ! हमारा कुछ भी दोष नही है मार खाते खाते हम आप का रहस्य छिपा न सके।

राक्षस।—भद्र ! वह कौन सा रहस्य है यह हम को नही समझ पड़ता। १५

सिद्धार्थक।—निवेदन करते है, मार खाने से, [ इतना ही कह लज्जा से नीचा मुंह कर लेता है ]।

मलयकेतु।—भागुरायण ! स्वामी के सामने लज्जा और भय से यह कुछ न कह सकैगा, इस से तुम सब बात आर्य्य से कहो। २०

भागुरायण।—कुमार की जो आज्ञा। अमात्य ! यह कहता है कि अमात्य राक्षस ने हम को चिट्ठी दे कर और सदेश कह कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस।—भद्र सिद्धार्थक ! क्या यह सत्य है ?

सिद्धार्थक।—[ लज्जा नाट्य कर के ] मार खाने के डर से २५ मैंने कह दिया।

राक्षस।—कुमार ! मार की डर से लोग क्या नही कह देते ?
मलयकेतु।—भागुरायण ! चिट्ठी दिखला दो और सदेशा
वह अपने मुह से कहैगा।
भागुरायण।—( चिट्ठी खोल कर 'स्वस्ति कही से कोई
५ किसी को' इत्यादि पढता है। )
राक्षस।—कुमार ! कुमार ! यह सब शत्रु का प्रयोग है।
मलयकेतु।—लेख अशून्य करने को आर्य ने जो आभरण
भेजे है वह शत्रु कैसे भेजैगा ? ( आभरण दिखलाता है )
राक्षस।—कुमार ! यह मैं ने किसी को नही भेजा। कुमार ने
१० यह मुझ को दिया, और मै ने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक
को दिया।
भागुरायण।—अमात्य ! ऐसे उत्तम आभरणों का विशेष कर
अपने अङ्ग से उतार कर कुमार की दी हुई वस्तु का—
यह पात्र है ?
१५ मलयकेतु।—और सदेश भी बडे प्रामाणिक सिद्धार्थक से
सुनना—यह आर्य्य ने लिखा है।
राक्षस।—कैसा सदेश और कैसी चिट्ठी ? यह हमारा कुछ
नही है !
मलयकेतु।—तो मुहर किस की है ?
राक्षस।—धूर्त्त लोग कपटमुद्रा भी बना लेते है।
२० भागुरायण।—कुमार ! अमात्य सच कहते है। सिद्धार्थक,
यह चिट्ठी किस की लिखी है ?
सिद्धार्थक।—( राक्षस का मुह देख कर चुप रह जाता है )।
भागुरायण।—चुप मत रहो। जी कडा कर के कहो।
सिद्धार्थक।—आर्य ! शकटदास ने।
२५ राक्षस—शकटदास ने लिखा तो मानों मैने ही लिखा।
मलयकेतु।—विजये ! शकटदास को हम देखा चाहते है।

भागुरायण । - ( आप ही आप ) आर्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नही करते । जो शकटदास आकर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है यह सब वृत्तान्त कह देगा ते मलयकेतु फिर बहक जायगा । प्रकाश ) कुमार ! शकटदास, अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करैंगे, इस से उन का कोई और लेख मगाकर अक्षर मिला लिये जाय ।

मलयकेतु ।—विजये ! ऐसा ही करो ।

भागुरायण ।—और मुहर भी आवै ।

मलयकेतु । —हा, यह भी । १०

कञ्चुकी । —जा आज्ञा ( बाहर जाता है और पत्र और मुहर लेकर आता है । ) कुमार ! यह शकटदास का लेख और मुहर है ।

मलयकेतु —( देख कर और अक्षर और मुहर को मिलान कर के ) आर्य ! अक्षर तो मिलते है । १५

राक्षस ।—( आप ही आप ) अक्षर नि सन्देह मिलते हैं, किन्तु शकटदास हमारा मित्र है, इस हिसाब से नही मिलते, तो क्या शकटदास ही ने लिखा अथवा

पुत्र दार की याद करि, स्वामि भक्ति तजि देत ।
छोड़ि अचल जस कों करत, चल धन सों जन हेत ॥ २०

या इसमे सन्देह ही क्या है ?

मुद्रा ताके हाथ की, सिद्धार्थक हू मित्र ।
ताही के कर को लिख्यौ, पत्रहु साधन चित्र ॥
मिलि कै शत्रुन सों करन, भेद भूलि निज धर्म ।
स्वामि विमुख शकटहि कियो, निश्चय यह खल कर्म ॥ २५

मलयकेतु ।—आर्य ! श्रीमान ने तीन आभरण भेजे, सो मिले, यह जो आप ने लिखा है सो उसी में का एक आभरण

यह भी है ? ( राक्षस के पहने हुए आभरण को देख कर आप ही आप ) क्या यह पिता के पहने हुए आभरण है ? ( प्रकाश ) आर्य, यह आभरण आपने कहा से पाया ?

राक्षस।—जौहरी से मोल लिया था।

५ मलयकेतु।—विजये ! तुम इन आभरणों को पहचानती हो ?

प्रतिहारी। – देख कर आसू भर के) कुमार ! हम सुगृहीत नामधेय महाराज पर्व्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानैगे ?

मलयकेतु।—(आखों मे आसू भर के )

१० भूषण प्रिय ! भूषण सबै, कुल भूषण ! तुव अङ्ग।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन सङ्ग॥

राक्षस। ( आपही आप) य पर्व्वतेश्वर के पहिने हुए आभरण हैं ? ( प्रकाश ) जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियों ने ही बेंचा है।

१५ मलयकेतु। – आर्य ! पिता के पहने हुए आभरण और फिर चन्द्रगुप्त के हाथ पडे हुए जौहरी बेंचै, यह कभी हो नही सकता। अथवा हो सकता है।

अधिक लाभ के लोभ सों, क्रूर ! त्यागि सब नेह।
बदले इन आभरन के तुम बेंच्यो मम देह॥

२० राक्षस। – ( आपही आप ) अरे ! यह दाव तो पूरा बैठ गया।

मम लेख, नहि यह किमि कहैं मुद्रा छपी जब हाथ की।
विश्वास होत न शकट तजि है प्रीति कबहु साथ की॥
पुनि बेंचि हैं नृप चन्द्र भूषण कौन यह पतियाइहै।
तासों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइ है॥

२५ मलयकेतु।—आर्य ! हम यह पूछते है।

राक्षस।—जो आर्य हो उस से पूछो, हम अब पापकारी अनार्य हो गये है।

मलयकेतु ।—स्वामि पुत्र तुव मौर्य हम, मित्र पुत्र सह हेत ।
पैहौ उत वाको दियो इत तुम हम कों देत ॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत तुम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीनो यह पाप ॥

राक्षस ।—(आंखों मे आसू भरके) कुमार ! इस का निर्णय तो आप ही ने कर दिया— ५

स्वामि पुत्र मम मौर्य्य तुम, मित्र पुत्र सह हेत ।
पैहैं उत वाको दियो, इत हम तुम को देत ॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत हम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीनो यह पाप ॥ १०

मलयकेतु ।—(चिट्ठी, पेटी इत्यादि दिखला कर) यह सब क्या है ?

राक्षस ।—(आखों मे आसू भर के) यह सब चाणक्य ने नहीं किया, दैव ने किया ।

निज प्रभु सों करि नेह जे भृत्य समर्पत देह । १५
तिन सों अपुने सुत सरिस सदा निबाहत नेह ॥
ते गुण गाहक नृप सबै जिन मारे छन माहि ।
ताही विधि को दोस यह औरन को कछु नाहि ॥

मलयकेतु ।—(क्रोधपूर्वक) अनार्य ! अब तक छल किए जाते हौ कि यह सब दैव ने किया । २०

विष कन्या दै पितु हत्यौ, प्रथम प्रीति उपजाय ।
अब रिपु सों मिलि हम सबन, बधन चहत ललचाय ॥

राक्षस ।—(दु:ख से आप ही आप) हां ! यह और जले पर नमक है । (प्रगट कानों पर हाथ रख कर) नारायण ! देव पर्वतेश्वर का कोई अपराध हम ने नही किया । २५

मलयकेतु ।—फिर पिता को किसने मारा ?

राक्षस ।—यह दैव से पछो ।

मलयकेतु।—दैव से पूछें, जीवसिद्धि क्षपणक से न पूछें?

राक्षस। (आप ही आप) क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है! हाय! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर लिया?

५ मलयकेतु।—(क्रोध से) शिखरसेन सेनापति से कहो कि राक्षस से मिल कर चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करने को पांच राजे जो हमारा बुरा चाहते हैं उन में कौलूत चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद और कश्मीराधीश पुष्कराक्ष ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इन को भूमि ही में

१० गाड़ दे, और सिन्धुराज सुषेण और पारसीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सेना चाहते हैं सो इन को हाथी ही के पैर के नीचे पिसवा दो।*

पुरुष।—जो कुमार की आज्ञा। (जाता है)

मलयकेतु।—राक्षस! हम मलयकेतु हैं, कुछ तुम से विश्वा-

१५ सघाती राक्षस नहीं हैं+ इस से तुम जाकर अच्छी तरह चन्द्रगुप्त का आश्रय करो।

चन्द्रगुप्त चाणक्य सों, मिलिए सुख सों आप।
हम तीनहु को नासि है, जिमि त्रिबर्ग कह पाप× ॥

भागुरायण।—कुमार! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिए।

२० कुसुमपुर घेरने को हमारी सेना चढ़ चुकी है।

उड़िक तियगन गडजुगल कह मलिन बनावति।
अलिकुल से कल अलकन निज कन धवल छवावति॥

---

* यही बात ऐथानियन ने गोतमारा से कही थी। Wilson कहते हैं कि चाणक्य की आज्ञा से ये राजे सब कैद कर लिये गए थे मारे नहीं गए थे।

+ अर्थात् हम तुम्हारा प्राण नहीं मारते।

× जैसे धर्म, अर्थ, काम को पाप नाश करता है।

चपल तुरगखुर घात उठी घन घुमड़ि नवीनी।
सत्रु सीस पैं धूरि परै गजमद सों भीनी॥

अपने भृत्यों के साथ मलयकेतु जाता है।

राक्षस।—(घबड़ा कर) हाय! हाय! चित्रवर्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए। हाय! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु को नहीं, मित्रों ही के नाश करने को होती है। अब हम मन्द-भाग्य क्या करैं? ५

जाहि तपोबन, पै न मन, शात होत सह क्रोध।
प्रान देहि? रिपु के जियत, यह नारिन को बोध॥
खींचि खड्ग कर पतग सम, जाहि अनल अरि पास। १०
कै या साहस होइ है, चन्दनदास बिनास॥

(सोचता हुआ जाता है।)

पटाक्षेप। इति पञ्चम अङ्क।

# छठा अंक

स्थान—नगर के बाहर सडक।

( कपडा, गहिना पहिने हुए सिद्धार्थक आता है। )

सिद्धार्थक।—

५ जलद नील तन जयति जय, केशव केशी काल।
जयति सुजन जन दृष्टि ससि, चन्द्रगुप्त नरपाल॥
जयति आर्य्य चाणक्य की, नीति सहज बल भौन।
बिनही साजे सैन नित, जीतत अरि कुल जौन॥

चलो आज पुराने मित्र समिद्धार्थक से भेंट करैं (घूमकर)
१० अरे! मित्र समिद्धार्थक आपही इधर आता है।

( समिद्धार्थक आता है )

समिद्धार्थक।—

मिटत ताप नहि पान सों, होत उछाह बिनास।
बिना मीत के सुख सबै, औरहु करत उदास॥

१५ सुना है कि मलयकेतु के कटक से मित्र सिद्धार्थक आ गया है। उसी को खोजने को हम भी निकले है कि मिलै तो बड़ा आनन्द हो। ( आगे बढ कर ) अहा! सिद्धार्थक तो यही है। कहो मित्र! अच्छे तो हो?

सिद्धार्थक।—अहा! मित्र समिद्धार्थक आप ही आगए। ( बढ कर )—कहो मित्र! क्षेम कुशल तो है?
२०

( दोनों गले से मिलते है )

समिद्धार्थक।—भला! यहा कुशल कहा कि तुम्हारे ऐसा मित्र बहुत दिन पीछे घर भी आया तो बिना मिले फिर चला गया।

सिद्धार्थक।—मित्र! क्षमा करो। मुझ को देखते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि इस प्रिय वृत्तान्त को अभी चन्द्रमा सदृश प्रकाशित शोभावाले परम प्रिय महाराज प्रियदर्शन से जा कर कहो। मै उसी समय महाराज के पास चला गया और उन से निवेदन कर के यह सब पुरस्कार पाकर तुम से मिलने को तुम्हारे घर अभी जाता ही था। ५

समिद्धार्थक।—मित्र! जो सुनने के योग्य हो तो महाराज प्रियदर्शन से जो प्रियवृत्तान्त कहा है वह हम भी सुनैं।

सिद्धार्थक।—मित्र! तुम से भी कोई बात छिपी है! सुनो! आर्य्य चाणक्य की नीति से मोहित मति हो कर उस नष्ट मलयकेतु ने राक्षस को दूर कर दिया और चित्रवर्मादिक पाचो प्रबल राजो को मरवा डाला। यह देखते ही और सब राजे अपने प्राण और राज्य का संशय समझ कर उस को छोड़ कर सैना सहित अपने अपने देश चले गए। जब शत्रु ऐसी निर्बल अवस्था मे हुआ, तो भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष, विजयवर्मा इत्यादि लोगों ने मलयकेतु को कैद कर लिया। १० १५

समिद्धार्थक।—मित्र! लोग तो यह जानते है कि भद्रभट इत्यादि लोग महाराज चन्द्रश्री को छोड़ कर मलयकेतु से मिल गए, तो क्या कुकवियों के नाटक की भांति इस के मुख में और तथा निर्वहण मे और बात है *? २०

सिद्धार्थक।—वयस्य! सुनो, जैसे दैव की गति नही जानी जाती वैसे ही आर्य्य चाणक्य की जिस नीति की भी गति नही जानी जाती उस को नमस्कार है। २५

समिद्धार्थक।—हा! कहो, तब क्या हुआ?

---

* अर्थात् नाटक की उत्तमता यही है कि जिस वर्णन, रीति और रस से आरम्भ हो वैसे ही समाप्त हो, यह नही कि पहिले कुछ, पीछे कुछ।

सिद्धार्थक।—तब इधर से सब सामग्री ले कर आर्य चाणक्य बाहर निकले और विपक्ष के शेष राजाओं को निःशेष कर के बब्बर लोगों की सब सामग्री लूट ली।

समिद्धार्थक। तो वह सब अब कहा हैं?

५ सिद्धार्थक।—वह देखो

स्रवत गडमद गरब गज, नदत मेघ अनुहार।
चाबुक भय चितवत चपल, खडे अस्व बहु द्वार॥

समिद्धार्थक।—अच्छा, यह सब जाने दो यह कहो कि सब लोगों के सामने इतना अनादर पाकर फिर भी आर्य्य
१० चाणक्य उसी मन्त्री के काम को क्यों करते है?

सिद्धार्थक।—मित्र! तुम अब तक निरे सीधेसाधे बने हो। अरे, अमात्य राक्षस भी आर्य चाणक्य की जिन चालों को नही समझ सकते उन को हम तुम क्या समझेंगे!

समिद्धार्थक।—वयस्य! अमात्य राक्षस अब कहा है?

१५ सिद्धार्थक।—उस प्रलय कोलाहल के बढ़ने के समय मलयकेतु की सेना से निकल कर उन्दुर नामक चर के साथ कुसुमपुर ही की ओर वह आते है, यह आर्य चाणक्य को समाचार मिला है।

समिद्धार्थक।—मित्र! नन्दराज्य के फिर स्थापन की प्रतिज्ञा
२० कर के स्वनाम तुल्य पराक्रम अमात्य राक्षस, उस काम को पूरा किए बिना फिर कैसे कुसुमपुर आते है?

सिद्धार्थक।—हम सोचते है कि चन्दनदास के स्नेह से।

समिद्धार्थक।—ठीक है, चन्दनदास के स्नेह ही से। किन्तु तुम सोचते हो कि चन्दनदास के प्राण बचेंगे?

२५ सिद्धार्थक।—कहा उस दीन के प्राण बचेंगे? हमी दोनों को वधस्थान में ले जाकर उस को मारना पडेगा।

समिद्धार्थक ।—( क्रोध से ) क्या आय चाणक्य के पास कोई घातक नही है कि ऐसा नीच काम हम लोग करैं ?

सिद्धार्थक ।—मित्र ! ऐसा कौन है जिस को इस जीवलोक म रहना हो और वह आर्य चाणक्य की आज्ञा न मानै ? चलो, हमलोग चाडाल का वेष बना कर चन्दनदास को वधस्थान मे लेचलैं ।

( दोनों जाते है )

इति प्रवेशक ।

---
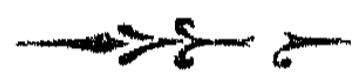
६ अक ।

दृश्य । बाहरी प्रान्त मैं प्राचीन बारी ।

( फांसी हाथ मे लिए हुए एक पुरुष आता है )

पुरुष—षट गुन सुदृढ़ गुथी मुख फासी ।
जय उपाय परिपाटी गासी ॥
रिपु बन्धन मैं पटु प्रति पोरी ।
जय चानक्य नीति को डोरी ॥

आर्य चाणक्य के चर उन्दुर ने इसी स्थान मैं मुझ को अमात्य राक्षस से मिलने कहा है। ( देख कर ) यह अमात्य राक्षस सब अङ्ग छिपाए हुए आते हैं । तब तक इस पुरानी बारी मे छिप कर हम देखे, यह कहां ठहरते है । ( छिप कर बैठना है )

(सब अग छिपाए हुए राक्षस आता है)

राक्षस—[ आखों मे आसू भर के हाय ! बड़े कष्ट की बात है
आश्रय बिनसे और पै, जिमि कुलटा तिय जाय ।
तजि तिमि नन्दहि चञ्चला, चन्द्रहि लपटी धाय ॥

देखादेखी प्रजहु सब, कीनो ता अनुगौन ।
तजि कै निज नृप नेह सब, कियो कुसुमपुर भौन ॥
होइ बिफल उद्योग मैं, तजि कै कारजभार ।
आप्त मित्र हू थकि रहे, सिर बिनु जिमि अहि छार ॥
तजि कै निज पति भुवनपति, सुकुल जात नृप नन्द ।
श्री वृषली गइ वृषल ढिग, सील त्यागि करि छन्द ॥
जाइ तहा थिर ह्वै रही, निज गुन सहज बिसारि ।
बस न चलत जब बाम बिधि, सब कछु देत बिगारि ॥
नन्द मरे सैलेश्वरहि, देन चह्यौ हम राज ।
सोऊ बिनसे तब कियो, तासुत हित सो साज ॥
बिगर्यौ तौन प्रबन्ध हू, मिट्यौ मनोरथ मूल ।
दोस कहा चानक्य को, दैवहि भो प्रतिकूल ॥

वाहरे म्लेच्छ मलयकेतु की मूर्खता ! जिस ने इतना नहीं समझा कि—

मरे स्वामिहू नहि तज्यौ, जिन निज नृप अनुराग ।
लोभ छाड़ि दै प्रान जिन, करी सत्रु सों लाग ॥
सोई राक्षस सत्रु सों, मिलि है यह अन्धेर ।
इतनो सूझ्यौ वाहि नहि, दई दैव मति फेर ॥

सो अब भी शत्रु के हाथ में पड़ के राक्षस बन मे चला जायगा, पर चन्द्रगुप्त से सधि न करैगा । लोग झूठा कहैं, यह अपयश हो, पर शत्रु की बात कौन सहैगा ? (चारो ओर देख कर) हा ! इसी प्रान्त में देव नन्द रथ पर चढ़ कर फिरने आते थे ।

इतहि देव अभ्यास हित, सर सजि धनु सन्धानि ।
रचत रहे भुव चित्र सम, रथ सुचक्र परिखानि ॥
जहँ नृपगन सकित रहे, इत उत थमे लखात ।
सोई भुव ऊजर भई, दृगन लखी नहि जात ॥

हाय! यह मन्द भाग्य अब कहा जाय? (चारो ओर देख कर) चलो, इस पुरानी बारी मे कुछ देर ठहर कर मित्र चन्दनदास का कुछ समाचार ले। (घूम कर आप ही आप) अहा! पुरुषों की भाग्य से उन्नति अवनति की भी क्या क्या गति होती है कोई नही जानता। ५

जिमि नव ससि कहँ सब लखत, निज निज करहि उठाय।
तिमि नृप सब हम को रहे, लखत अनन्द बढ़ाय॥
चाहत है नृपगन सबै, जासु कृपा दृग कोर।
सो हम इत सकित चलत, मानहु कोऊ चोर॥

वा जिस के प्रसाद से यह सब था, जब वही नही है तो यह होईगा। (देख कर) यह पुराना उद्यान कैसा भयानक हो रहा है। १०

नसे बिपुल नृप कुल सरिस, बड़े बड़े गृह जाल।
मित्र नास सों साधुजन, हिय सम सूखे ताल॥
तरुवर भे फलहीन जिमि, बिधि बिगरे सब रीति।
तृन सों लोपी भूमि जिमि, मति लहि मूढ़ कुनीति॥ १५
तीछन परसु प्रहार सों, कटे तरोवर गात।
रोअत मिलि पिड्रुक सग, ताके घाव लखात*॥
दुखी जानि निज मित्र कहँ, अहि मन लेत उसास।
निज केंचुल मिस धरत है, फाहा तरु-ब्रन पास॥
तरुगन को सूख्यौ हियो, छिदे कीट सों गात। २०
दुखी पत्र फल छाह बिनु, मनु मसान सब जात॥

तो तब तक हम इस सिला पर, जो भाग्यहीनों को सुलभ है, लेटै। (बैठ कर और कान देकर सुन कर) अरे! यह शख ढके से मिला हुआ नान्दी शब्द कहा हो रहा है?

---

* वृक्ष के खोढरे में से जो शब्द निकलता है वही मानो वृक्ष रोते हैं और उन वृक्षों पर पेंडुकी बोलती हैं वह मानो रोने में वृक्षो का साथ देती हैं।

अति ही तीखन होन सों, फोरत स्रोता कान।
जब न समायो घरन मैं, तब इत कियो पयान॥
सख पटह धुनि सों मिल्यौ, भारी मङ्गल नाद।
निकस्यौ मनहु दिगन्त को, दूरी देखन स्वाद॥

५ [कुछ सोचकर] हा, जाना। यह मलयकेतु के पकड़े जाने पर राजकुल *(रुक कर) मौर्यकुल का आनन्द देने को हो रहा है।

(आखों में आसू भर कर) हाय! बड़े दुःख की बात है।

मेरे बिनु अब जीति दल, शत्रु पाइ बल घोर।
मोहि सुनावन हेत ही, कीन्हों शब्द कठोर॥

१० पुरुष।—अब तो यह बैठे हैं तो अब आर्य चाणक्य की आज्ञा पूरी करै। (राक्षस की ओर न देख कर अपने गले में फांसी लगाना चाहता है।)

राक्षस (देख कर आप ही आप) अरे यह फांसी क्यों लगाता है? निश्चय कोई हमारा सा दुखिया है। जो हो,

१५ पूछैं तो सही (प्रकाश) भद्र, यह क्या करते हो?

पुरुष।—(रोकर) मित्रों के दुःख से दुखी होकर हमारे ऐसे मन्दभाग्यों को जो कर्त्तव्य है।

राक्षस।—(आप ही आप) पहले ही कहा था, कोई हमारा

२० सा दुखिया है। (प्रकाश) भद्र+जो अतिगुप्त वा किसी विशेष कार्य की बात न हो तो हम से कहो कि तुम क्यों प्राण त्याग करते हो?

पुरुष।—आर्य! न तो गुप्त ही है न कोई बड़े काम की बात है, परन्तु मित्र के दुःख से मैं अब क्षण भर भी ठहर

२५ नहीं सकता।

---

* जहा ऐसी उक्ति होती है वहा यह ध्वनि है कि मन्त्री "पहले" जो कहा था वह ठीक है रुक कर आग्रह से कुछ और कह दिया।

+यहा संस्कृत में व्यसनि ब्रह्मचारिन सम्बोधन है।

राक्षस ।—( आप ही आप दुःख से ) मित्र की विपत्ति मे हम पराए लोगों की भांति उदासीन हो कर जो देर करते है मानो उस मे शीघ्रता करने की यह अपना दुःख करने के बहाने शिक्षा देता है । ( प्रकाश ) भद्र ! जो रहस्य नही है तो हम सुना चाहते है कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है ? 5

पुरुष ।—आप का इस मे बड़ा ही हठ है तो कहना पड़ा । इस नगर मे जिष्णुदास नामक एक महाजन है ।

राक्षस ।—( आप ही आप ) वह तो चन्दनदास का बड़ा मित्र है । 10

पुरुष । - वह हमारा प्यारा मित्र है ।

राक्षस ।—( आप ही आप ) कहता है कि वह हमारा प्यारा मित्र है । इस अति निकट सम्बन्ध से इस को चन्दनदास का वृत्तान्त ज्ञात होगा ।

पुरुष ।—( रोकर ) "सो दीन जनों को सब धन देकर वह 15 अब अग्निप्रवेश करने जाता है" यह सुन कर हम यहा आये है कि "इस दुःख वार्ता सुनने के पूर्व ही अपना प्राण दे दें ।"

राक्षस ।—भद्र ! तुम्हारे मित्र के अग्निप्रवेश का कारण क्या है ? कै तेहि रोग असाध्य भयो कोऊ जाको न औषध 20 नाहि निदान है ।

पुरुष ।—नही आर्य्य !

राक्षस ।—कै विष अग्निहुसो बढ़ि कै नृपकोप महा फसि त्यागत प्रान है ।

पुरुष ।—रामराम ! चन्द्रगुप्त के राज्य मे लोगों को प्राणहिंसा 25 का भय कहा ?

राक्षस ।—कै कोउ सुन्दरी पै जिय देत लग्यो हिय माहि बियोग को बान है ।

पुरुष।—रामराम! महाजन लोगों की यह चाल नहीं, विशेष कर के साधु जिष्णुदास की।

राक्षस। तौ कह मित्रहि को दुख वाहू के नास को हेतु तुम्हारे मान है।

५ पुरुष।—हां, आर्य्य।

राक्षस।—( घबड़ा कर आप ही आप ) अरे, इस के मित्र का प्रिय मित्र तो चन्दनदास ही है और यह कहता है कि सुहृद्विनाश ही उस के विनाश का हेतु है इस से मित्र के स्नेह से मेरा चित्त बहुत ही घबड़ाता है। (प्रकाश) भद्र!

१० तुम्हारे मित्र का चरित्र हम सविस्तर सुना चाहते हैं।

पुरुष।—आर्य! अब मैं किसी प्रकार से मरने में विलम्ब नहीं कर सकता।

राक्षस।—यह वृत्तान्त तो अवश्य सुनने के योग्य है इससे कहो।

पुरुष।—क्या करैं? आप ऐसा हठ करते हैं तो सुनिये।

१५ राक्षस।—हां! जी लगा कर सुनते हैं, कहो।

पुरुष।—आप ने सुना ही होगा कि इस नगर में प्रसिद्ध जौहरी सेठ चन्दनदास है।

राक्षस।—[ दुःख से आप ही आप ] दैव ने हमारे बिनाश का द्वार अब खोल दिया। हृदय! स्थिर हो अभी न जाने

२० क्या क्या कष्ट तुम को सुनना होगा। ( प्रकाश ) भद्र! हम ने भी सुना है कि वह साधु अत्यन्त मित्रवत्सल है।

पुरुष।—वह जिष्णुदास के अत्यन्त मित्र है।

राक्षस।—[ आप ही आप ] यह सब हृदय के हेतु शोक का वज्रपात है [ प्रकाश ] हां, आगे।

२५ पुरुष।—सो जिष्णुदास ने मित्र की भांति चन्द्रगुप्त से बहुत बिनय किया।

राक्षस।—क्या क्या?

पुरुष।—कि देव! हमारे घर मे जो कुछ कुटुम्बपालन का द्रव्य है आप सब ले लें, पर हमारे मित्र चन्दनदास को छोड़ दे।

राक्षस।—( आप ही आप ) वाह जिष्णुदास! तुम धन्य हो! तुम ने मित्रस्नेह का निर्वाह किया।

जा धन के हित नारि तजै पति पूत तजै पितु सीलहि खोई। 　५
भाई सों भाई लरै रिपुसे पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई॥
ता धनको बनिया ह्वै गिन्यौ न दियो दुख मीत सों आरत होई।
स्वारथ अर्थ तुम्हारोई है तुमरे सम और न या जग कोई॥

( प्रकाश ) इस बात पर मौर्य ने क्या कहा?

पुरुष।—आर्य! इस पर चन्द्रगुप्त ने उस से कहा कि जिष्णुदास! हम ने धन के हेतु चन्दनदास को नही दण्ड दिया है। इस ने अमात्य राक्षस का कुटुम्ब अपने घर मे छिपाया, और बहुत मागने पर भी न दिया। अब भी जो यह दे दे तो छूट जाय, नही तो इस को प्राणदण्ड होगा। तभी हमारा क्रोध शान्त होगा और दूसरे लोगों को भी इस से डर होगा—यह कह उस को वधस्थान मे भेज दिया। जिष्णुदास ने कहा कि "हम कान से अपने मित्र का अमङ्गल सुनने के पहिले मर जाय तो अच्छी बात है' और अग्नि मे प्रवेश करने को बन मे चले गए। हम ने भी इसी हेतु कि उनका मरण न सुनैं यह निश्चय किया कि फासी लगा कर मर जाय और इसी हेतु यहा आए है। 　१०, १५, २०

राक्षस।—( घबड़ा कर) अभी चन्दनदास को मारा तो नही?

पुरुष।—आर्य! अभी नही मारा है, बारम्बार अब भी उन से अमात्य राक्षस का कुटुम्ब मागते है और वह मित्रवत्सलता से नही देते, इसी मे इतना विलम्ब हुआ। 　२५

राक्षस।—( सहर्ष आप ही आप ) वाह मित्र चन्दनदास! वाह! धन्य! धन्य!

मित्र परोच्छहु मैं कियो, सरनागत प्रतिपाल।
निरमल जस सिबि* सो लियो, तुम या काल कराल॥

(प्रकाश) भद्र! तुम शीघ्र जाकर जिष्णुदास को जलने से रोको, हम जाकर अभी चन्दनदास को छुड़ाते हैं।

५ पुरुष।—आर्य! आप किस उपाय से चन्दनदास को छुड़ाइएगा?

राक्षस।—(आतङ्क से खड्ग मियान से खींच कर) इन दुखों में एकान्त मित्र निष्कृप कृपाण से।
समर साध तन पुलकित नित साथी मम कर को।
१० रन मह बारहि बार परिछयौ जिन बल-पर को॥
बिगत जलद नभ नील खड्ग यह रोस बढ़ावत।
मीत कष्ट सों दुखिहु मोंहि रनहित उमगावत॥

---

* शिवि ने शरणागत कपोत के हेतु अपना शरीर दे दिया था।

राजा शिवि जब ९२ यज्ञ कर चुके और आगे फिर प्रारम्भ किया तब इन्द्र को भय हुआ कि अब मेरा पद लेने में आठ यज्ञ बाकी हैं, उस ने अग्नि को कपोत बनाया और आप बाज बन उन के मारने को चला, तब वह भागा हुआ राजा की शरण में गया। राजा ने उस का वचन सुन बाज को देख यज्ञशाला में अपनी गोदी में छिपा लिया और बाज को निवारण किया। बाज बोला कि महाराज! आप यहा यह न्याय अनर्थ करते हैं कि मेरा आहार छीन लिया? मैं भूख से शरीर को छोड़ आप को पापभागी करूंगा। तब राजा ने कहा कि इसे तो नहीं देंगे, इस के पलटे में जो मांगेगा सो देंगे, पश्चात इस के प्रति उत्तर में यह बात ठहरी कि राजा कबूतर के तुल्य तौल के शरीर का मांस दे, तब हम कबूतर को छोड़ देवें। इस बात पर राजा ने प्रसन्न हो तुला पर एक ओर कपोत को बैठाया, दूसरी ओर अपने शरीर का मांस काट कर चढ़ाने लगे परन्तु सब शरीर का मांस काट काट के चढ़ाय दिया तौ भी कबूतर के समान नहीं हुआ। तब राजा ने गले पर खड्ग चलाया त्योंही विष्णु ने हाथ पकड़ अपने लोक को भेज दिया।

पुरुष । सेठ चन्दनदास के प्राण बचाने का उपाय मैं ने सुना किन्तु ऐसे टेढ़े समय मे इसका परिणाम क्या होगा, यह मै नही कह सकता (राक्षस को देख कर पैर पर गिरता है) आर्य ! क्या सुगृहीत नामधेय अमात्य राक्षस आप ही है ? यह मेरा संदेह आप दूर कीजिए । ५

राक्षस ।—भद्र ! भर्तृकुल विनाश से दुखी और मित्र के नाश का कारण यथार्थ नामा अनार्य राक्षस मै ही हूं ।

पुरुष ।—(फिर पैर पर गिरता है) धन्य है ! बड़ा ही आनन्द हुआ । आप ने हम को आज कृतकृत्य किया ।

राक्षस ।—भद्र ! उठो । देर करने की कोई आवश्यकता नही । १० जिष्णुदास से कहो कि राक्षस चन्दनदास को अभी छुड़ाता है ।

(खड्ग खींचे हुए, 'समर साध' इत्यादि पढ़ता हुआ इधर उधर टहलता है)

पुरुष ।—(पैर पर गिर कर) अमात्यचरण ! प्रसन्न हों । मैं १५ यह बिनती करता हूं कि चन्द्रगुप्त दुष्ट ने पहले शकटदास के वध की आज्ञा दी थी । फिर न जाने कौन शकटदास को छुड़ा कर उस को कही परदेस मे भगा ले गया ! आर्य शकटदास के वध मे धोखा खाने से चन्द्रगुप्त ने क्रोध कर के प्रमादी समझ कर उन वधिकों ही को मार डाला । २० तब से वधिक जो किसी को वधस्थान मे ले जाते हैं और मार्ग मे किसी को शस्त्र खींचे हुए देखते है तो छुड़ा ले जाने के भय से अपराधी को बीच ही मे तुरत मार डालते हैं । इस से शस्त्र खींचे हुए आप के वहा जाने से चन्दनदास की मृत्यु में और भी शीघ्रता होगी (जाता है) । २५

राक्षस।—(आप ही आप) उस चाणक्य वटु का नीतिमार्ग कुछ समझ नही पडता क्योंकि—

सकट बच्यौ जो ता कहे, तो क्यौ घातक घात।
जाल भयो का खेल मै, कछु समझ्यौ नहि जात॥

५ (सोचकर) नहि शस्त्र को यह काल यासों मीत जीवन जाइ है।
जौ नीति सोचै या समय तो व्यर्थ समय नसाइ है॥
चुप रहनहू नहि जोग जब मम हित विपति चन्द परयौ।
तासों बचावन प्रियहि अब हम देह निज विक्रय करयौ॥

(तलवार फेंक कर जाता है)

१० छठा अंक समाप्त हुआ।

# सप्तम अंक

स्थान—सूली देने का मसान

( पहिला चांडाल आता है )

चांडाल।—हटो लोगो हटो, दूर हो भाइयो, दूर हो। जो अपना प्राण, धन और कुल बचाना हो तो दूर हो। ५ राजा का विरोध यत्नपूर्वक छोड़ो।

करि कै पथ्य विरोध इक, रोगी त्यागत प्रान।
पै विरोध नृप सों किए, नसत सकुल नर जान॥

जो न मानो तो इस राजा के विरोधी को देखो जो स्त्री, पुत्र समेत यहां सूली देने को लाया जाता है। (ऊपर १० देख कर) क्या कहा? कि इस चन्दनदास के छूटने का कुछ उपाय भी है? भला इस बिचारे के छूटने का कौन उपाय है? पर हां, जो यह मन्त्री राक्षस का कुटुम्ब दे दे तो छूट जाय। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा कि यह शरणागतवत्सल प्राण देगा पर यह बुरा कर्म न करैगा? १५ तो फिर इसकी बुरी गति होगी क्योंकि बचने का तो वही एक उपाय है।

( कंधे पर सूली रक्खे मृत्यु का कपड़ा पहिने चन्दन-दास, उसकी स्त्री और पुत्र, और दूसरा चांडाल आते हैं )

स्त्री।—हाय हाय! जो हम लोग नित्य अपनी बात बिगड़ने २० के डर से फूंक फूंक कर पैर रखते थे उन्हीं हम लोगों को चोरों की भांति मृत्यु होती है। काल देवता को नमस्कार है जिस को मित्र उदासीन सभी एक से हैं, क्योंकि—

छोडि मास भख मरन भय, जियहि खाइ तृन घास।
निन गरीब मृगको करहि, निरदय ब्याधा नास॥

( चारो ओर देख कर )

अरे भाई जिष्णुदास! मेरी बात का उत्तर क्यौ नही
५ देते? हाय! ऐसे समय मे कौन ठहर सकता है।

च० दा०—[ आसू भर कर ] हाय! यह मेरे सब मित्र बिचारे कुछ नही कर सकते, केवल रोते है और अपने को अकरण्य समझ शोक से सूखा सूखा मुह किये आसू भरी आखों से एक टक मेरी ही ओर देखते चले आते है।

१० दोनों चाडाल। अजी चन्दनदास! अब तुम फासी के स्थान पर आ चुके इस से कुटुम्ब को बिदा करो।

च० दा०।—( स्त्री से ) अब तुम पुत्र को लेकर जाओ, क्योंकि आगे तुम्हारे जाने की भूमि नही है।

स्त्री।—ऐसे समय में तो हम लोगों को बिदा करना उचित ही
१५ है, क्यौंकि आप परलोक जाते हैं, कुछ परदेश नहीं जाते ( रोती है )।

च० दा०।—सुनो मै कुछ अपने दोष से नही मारा जाता, एक मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, तो इस हर्ष के स्थान पर क्यौ रोती है?

२० स्त्री।—नाथ! जो यह बात है तो कुटुम्ब को क्यौं बिदा करते हौ?

च० दा०।—तो फिर तुम क्या कहती हो?

स्त्री।—(आसू भर कर ) नाथ! कृपा कर के मुझे भी साथ ले चलो।

२५ च०दा०।—हा! यह तुम कैसी बात कहती हो? अरे! तुम इस बालक का मुह देखो और इस की रक्षा करो, क्यौंकि

यह बिचारा कुछ भी लोकव्यवहार नही जानता। यह किसका मुह देख के जीएगा?

स्त्री।—इस को रक्षा कुलदेवी करैंगी। बेटा! अब पिता फिर न मिलैंगे इस से मिल कर प्रणाम कर ले।

बालक।—(पैरों पर गिर के) पिता! मैं आप के बिना क्या करूगा? ५

चं० दा०।—बेटा! जहा चाणक्य न हो वहा बसना।

दोनों चाडाल।—(सूली खड़ी कर के) अजी चन्दनदास! देखो, सूली खड़ी हुई, अब सावधान हो जाओ।

स्त्री।—(रोकर) लोगो, बचाओ! अरे! कोई बचाओ! १०

च० दा०।—भाइयो, तनिक ठहरो (स्त्री से) अरे! अब तुम रोरो कर क्या नन्दों को स्वर्ग से बुला लोगी? अब वे लोग यहा नही है जो स्त्रियों पर सर्व्वदा दया रखते थे।

१ चाडाल।—अरे वणुवेत्रक! पकड़ इस चन्दनदास को, घरवाले आप ही रो पीट कर चले जायगे। १५

२ चाडाल।—अच्छा वज्रलोमक, मै पकड़ता हूं।

चं०दा०।—भाइयो! तनिक ठहरो, मै अपने लड़के से तो मिल लूं (लड़के को गले लगा कर और माथा सूघ कर) बेटा! मरना तो था ही पर एक मित्र के हेतु मरते हैं इस से सोच मत कर। २०

पुत्र।—पिता, क्या हमारे कुल के लोग ऐसा ही करते आए है? (पैर पर गिर पड़ता है।)

२ चाडाल।—पकड़ रे बज्रलोमक! (दोनों चदनदास को पकड़ते है)।

स्त्री।—लोगो! बचाओ रे, बचाओ! २५

( वेग से राक्षस आता है )

राक्षस।—डरो मत, डरो मत। सुनो सुनो सेनापति !
चन्दनदास को मत मारना, क्योंकि—

नसत स्वामिकुल जिन लख्यो, निज त्रख शत्रु समान।
५ मित्रदुःख हू मैं धरयौ, निलज होइ जिन प्रान॥
तुम सों हारि बिगारि सब कढी न जाकी सांस।
ता राक्षस के कंठ मैं, डारहु यह जमफांस॥

च० दा०।—( देख कर और आखों मे आसू भर कर )
अमात्य ! यह क्या करते हो ?

१० राक्षस। मित्र, तुम्हारे सच्चरित्र का एक छोटा सा अनुकरण।

च० दा।—अमात्य, मेरा किया तो सब निष्फल हो गया, पर आप ने ऐसे समय यह साहस अनुचित किया।

राक्षस।—मित्र चन्दनदास ! उराहना मत दो, सभी स्वार्थी है।
१५ ( चांडाल से ) अजी ! तुम उस दुष्ट चाणक्य से कहो।

दोनों चांडाल।—क्या कहैं ?

राक्षस।—

जिन कलि मैं हू मित्र हित, तृन सम छोड़े प्रान।
जाके जस-रवि सामुहे, शिवि जस दीप समान॥
२० जाको अति निर्मल चरित, दया आदि नित जानि।
बौद्धहु सब लज्जित भए, परम शुद्ध जेहि मानि॥
ता पूजा के पात्र कों, मारत तू धरि पाप।
जाके हितु सो शत्रु तुव, आयो इत मैं आप॥

१ चांडाल।—अरे वेणुवेत्रक ! तू चन्दनदास को पकड़ कर
२५ इस मसान के पेड़ की छाया मे बैठ, तब से मन्त्री चाणक्य को मै समाचार दू कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

२ चाडाल ।—अच्छा रे वज्रलोमक । ( चन्दनदास, स्त्री, बालक और सूली को लेकर जाता है ) ।

१ चाडाल ।—( राक्षस को लेकर घूम कर ) अरे ! यहा पर कौन है ? नन्दकुल सैनासचय के चूर्ण करनेवाले वज्र से, वैसे ही मौर्य्यकुल मे लक्ष्मी और धर्म्म स्थापना करने वाले, आर्य्य चाणक्य से कहो ।

राक्षस ।—( आप ही आप ) हाय ! यह भी राक्षस को सुनना लिखा था !

१ चाडाल ।—कि आप की नीति ने जिस की बुद्धि को घेर लिया है, वह अमात्य राक्षस पकड़ा गया ।

( परदे मे सब शरीर छिपाए केवल मुह खोले चाणक्य आता है )

चाणक्य ।—अरे कहो, कहो ।

किन निज बसन हि मैं धरी, कठिन अगिनि की ज्वाल ?
रोकी किन गति वायु की, डोरिन ही के जाल ?
किन गजपति मर्द्दन प्रबल, सिह पीजरा दीन ?
किन केवल निज बाहु बल, पार समुद्रहि कीन ?

१ चाडाल —परमनीतिनिपुण आप ही ने तो ।

चाणक्य ।—अजी ! ऐसा मत कहो, वरन "नन्दकुलद्वेषी दैव ने" यह कहो ।

राक्षस ।—( देख कर आप ही आप ) अरे ! क्या यही दुरात्मा वा महात्मा कौटिल्य है ?

सागर जिमि बहु रत्नमय, तिमि सब गुण की खानि ।
तोष होत नहि देखि गुण, बैरी [illegible] निज जानि ॥

चाणक्य ।—( देख कर ) अरे ! यही अमात्य राक्षस है ?

जिस महात्मा ने—

बहु दुख सों सोचत सदा, जागत रैन बिहाय।
मेरी मति अरु चन्द्र की, सैनहि दई थकाय॥
(परदे से बाहर निकल कर) अजी अजी अमात्य राक्षस! मै विष्णुगुप्त आप को दण्डवत् करता हूं। (पैर छूता है)
५ राक्षस।—(आप ही आप) अब मुझे अमात्य कहना तो केवल यह चिढ़ाना है (प्रगट) अजी विष्णुगुप्त! मैं चाडालों से छू गया हू इस से मुझे मत छूओ।
चाणक्य।—अमात्य राक्षस! वह श्वपाक नही है, वह आप का जाना सुना सिद्धार्थक नामा राजपुरुष है और दूसरा
१० भी समिद्धाथक नामा राजपुरुष ही है, और इन्ही दोनों द्वारा विश्वास उत्पन्न कर के उस दिन शकटदास को धोखा दे कर मै ने वह पत्र लिखवाया था।
राक्षस।—(आप ही आप) अहा! बहुत अच्छा हुआ कि मेरा शकटदास पर से सदेह दूर हो गया।
१५ चाणक्य।—बहुत कहा तक कह—
वे सब भद्रभटादि वह, सिद्धार्थक वह लेख।
वह भदन्त वह भूषणहु, वह नर आरत भेख॥
वह दुख चन्दनदास को, जो कछु दियो दिखाय।
सो सब मम (लज्जा से कुछ सकुच कर)
२० सो सब राजा चन्द्र को, तुम सो मिलन उपाय॥
देखिए, यह राजा भी आप से मिलने आप ही आते हैं।
राक्षस।—(आप ही आप) अब क्या करूँ? (प्रगट) हा! मै देख रहा हू।

(सेवको के सग राजा आता है)

२५ राजा।—(आप ही आप) गुरु जी ने बिना युद्ध ही दुर्जय शत्रु का कुल जीत लिया इस में कोई सदेह नही, मैं तो बड़ा लज्जित हो रहा हूं, क्योंकि—

ह्वै बिनु काम लजाय करि, नीचो मुख भरि सोक ।
सोवत सदा निषङ्ग में, मम बानन के थोक ॥
सोवहि धनुष उतारि हम, जदपि सकहि जग जीति ।
जा गुरु के जागत सदा, नीति निपुण गत भीति ॥

( चाणक्य के पास जा कर ) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है । ५

चाणक्य ।—वृषल ! अब सब असीस सच्ची हुई, इस से इन पूज्य अमात्य राक्षस को नमस्कार करो, यह तुम्हारे पिता के सब मन्त्रियों मे मुख्य है ।

राक्षस ।—( आप ही आप ) लगाया न इस ने सम्बन्ध १०

राजा ।—( राक्षस के पास जा कर ) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है ।

राक्षस ।—( देख कर आप ही आप) अहा ! यही चन्द्रगुप्त है !

होनहार जाको उदय, बालपने ही जोइ । १५
राज लह्यौ जिन बाल गज, जूथाधिप सम होइ ॥

( प्रगट ) महाराज ! जय हो ।

राजा ।—आर्य्य !

तुमरे आछत बहुरि गुरु, जागत नीति प्रबीन ।
कहहु कहा या जगत में, जाहि न जय हम कीन ॥ २०

राक्षस ।—( आप ही आप ) देखो, यह चाणक्य का सिखाया पढ़ाया मुझ से कैसी सेवकों की सी बात करता है ! नहीं २, यह आप ही विनीत है । अहा ! देखो, चन्द्रगुप्त पर डाह के बदले उलटा अनुराग होता है । चाणक्य सब स्थान पर यशस्वी है, क्योंकि— २५

पाइ स्वामि सतपात्र जौ, मन्त्री मूरख होइ ।
तौह पावै लाभ जस, इत तौ पण्डित दोइ ॥

मूरख स्वामी नहिं गिरै, चतुर सचिव हू हारि ।
नदी तीर तरु जिमि नसत, जीरन ह्वै लहि बारि ॥

चाणक्य।—क्यौं अमात्य राक्षस ! आप क्या चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते है ?

५ राक्षस।—इस मे क्या सन्देह है ?

चाणक्य।—पर अमात्य ! आप शस्त्र ग्रहण नही करते, इस से सन्देह होता है कि आप ने अभी राजा पर अनुग्रह नही किया, इस से जो सच ही चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हों तो यह शस्त्र लीजिये ।

१० राक्षस।—सुनो विष्णुगुप्त ! ऐसा कभी नही हो सकता, क्यौंकि हम लोग उस योग्य नही, विशेष कर के जब तक तुम शस्त्र ग्रहण किए हो तब तक हमारे शस्त्र ग्रहण करने का क्या काम है ?

चाणक्य।—भला अमात्य ! आपने यह कहा से निकाला,
१५ कि हम योग्य है और आप अयोग्य हैं ? क्यौंकि देखिये—

रहत लगामहि कसे अश्व की पीठ न छोड़त ।
खान पान असनान भोग तजि मुख नहि मोड़त ॥
छूटे सब सुख साज नीद नहि आवत नयनन ।
निसि दिन चौंकत रहत बीर सब भय धरि निज मन ॥
२० वह हौदन सों सब छत कस्यौ नृप गजगन अवरेखिए ।
रिपुदर्प दूर कर अति प्रबल निज महातमबल देखिए ॥

वा इन बातों से क्या ! आप के शस्त्र ग्रहण किये बिना तो चन्दनदास बचता भी नही ।

राक्षस। (आप ही आप)

२५ नन्द नेह छूट्यौ नही, दास भए अरि साथ ।
ते तरु कैसे काटि है, जे पाले निज हाथ ॥

कैसे करिहैं मित्र पै, हम निज कर सों घात ।
अहो भाग्य गति अति प्रबल, मोहि कछु जानि न जात ॥
( प्रकाश ) अच्छा विष्णुगुप्त ! मंगाओ खड्ग "नमस्सर्व्व कार्य्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय" देखो, मैं उपस्थित हूं ।

चाणक्य ।—( राक्षस को खड्ग दे कर हर्ष से ) राजन् वृषल ! बधाई है बधाई है ! अब अमात्य राक्षस ने तुम पर अनुग्रह किया । अब तुम्हारी दिन दिन बढ़ती ही है । ५

राजा ।—यह सब आप की कृपा का फल है ।

( पुरुष आता है । )

पुरुष ।—जय हो महाराज की, जय हो । महाराज ! भद्रभट भागुरायणादिक मलयकेतु को हाथ पैर बांध कर लाए हैं और द्वार पर खड़े हैं, इस में महाराज की क्या आज्ञा होती है ? १०

चाणक्य ।—हां, सुना । अजी ! अमात्य राक्षस से निवेदन करो, अब सब काम वही करैंगे । १५

राक्षस ।—(आप ही आप) कैसे अपने वश में कर के मुझी से कहलाता है । क्या करैं ? ( प्रकाश ) महाराज, चन्द्रगुप्त ! यह तो आप जानते ही हैं कि हम लोगों का मलयकेतु का कुछ दिन तक सम्बन्ध रहा है । इस से उस के प्राण तो बचाने ही चाहिए । २०

राजा ।—( चाणक्य का मुंह देखता है )

चाणक्य ।—महाराज ! अमात्य राक्षस की पहिली बात तो सर्व्वथा माननी ही चाहिये ( पुरुष से ) अजी ! तुम भद्रभटादिकों से कह दो कि "अमात्य राक्षस के कहने से महाराज चन्द्रगुप्त मलयकेतु को उस के पिता २५

का राज्य देते हैं" इस से तुम लोग अग जा कर उस को राज पर बिठा आओ।

पुरुष।—जो आज्ञा।

चाणक्य।—अजी अभी ठहरो, सुनो! विजयपाल दुर्गपाल से
५ यह कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र ग्रहण से प्रसन्न हो कर महाराज चन्द्रगुप्त यह आज्ञा करते है कि "चन्दनदास को सब नगरो का जगत्सेठ कर दो।"

पुरुष।—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य।—चन्द्रगुप्त! अब और मै क्या तुम्हारा प्रिय करू?

१० राजा।—इस से बढ़ कर और क्या भला होगा?

मैत्री राक्षस सों भई, मिल्यौ अकटक राज।
नन्द नसे सब अब कहा, यासो बढि सुखसाज॥

चाणक्य।—(प्रतिहारी से) विजये! दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि "अमात्य राक्षस के मेल से प्रसन्न हो कर
१५ महाराज चन्द्रगुप्त आज्ञा करते हैं कि हाथी, घोड़ो को छोड कर और सब बधुओ का बन्धन छोड़ दो" वा जब अमात्य राक्षस मन्त्री हुए तब अब हाथी घोड़ो का क्या सोच है? इस से—

छोड़ौ सब गज तुरग अब, कछु मत राखौ बाधि।
२० केवल हम बाधत सिखा, निज परतिज्ञा साधि॥

(शिखा बाधता है)

प्रतिहारी।—जो आज्ञा (जाती है)।

चाणक्य।—अमात्य राक्षस! मै इस से बढ़ कर और कुछ भी आप का प्रिय कर सकताहू?

राक्षस।—इस से बढ कर और हमारा क्या प्रिय होगा? पर जो इतने पर भी सन्तोष न हो तो यह आशीर्व्वाद सत्य हो—

' वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटिस्प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री।
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवरं राजमूर्तेः ५
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीम्पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः॥"

(सब जाते हैं)

सप्तम अंक समाप्त हुआ।

॥ इति ॥

# APPENDIX A

# उपसंहार (अक्षर) क ।

इस नाटक मे आदि अन्त तथा अङ्कों के बिश्रामस्थल में रंगशाला मे ये गीत गाने चाहिए । यथा—

सब के पूर्व्व मङ्गलाचरण में ।

( ध्रुवपद चौताला )

५ जय जय जगदीस राम, श्याम धाम पूर्ण काम, आनद घन ब्रह्म विष्णु, सत् चित सुखकारी । कंस रावनादि काल, सतत प्रनत भक्तपाल, सोभित गल मुक्तमाल, दीनतापहारी ॥ प्रेम भरन पापहरन, असरन जन सरन चरन, सुखहि करन दुखहि दरन, वृन्दाबनचारी । रमाबास जगनिवास, राम रमन
१० समनत्रास, बिनवत हरिचन्द दास, जय जय गिरिधारी ॥ १ ॥

( प्रस्तावना के अन्त मे प्रथम अङ्क के आरम्भ मे )

( चाल लखनऊ की ठुमरी "शाहजादे आलम तेरे लिये" इस चाल की )

जिनके हितकारक पण्डित हैं तिन कों कहा सत्रुन को डर है ।
१५ समुझैं जग मे सब नीतिन्ह जो तिन्हे दुर्ग बिदेश मनो घर है ।
जिन मित्रता राखी है लायक सो तिनको तिनकाहू महासर है ।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौ तिनकी जय हो सब ही थर है॥२॥

( प्रथम अङ्क की समाप्ति और दूसरे अङ्क के प्रारम्भ मे )

जग मै घर की फूट बुरी । घर के फूटहि सों बिनसाई सुबरन लकपुरी ॥ फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो। जाको घाटो या भारत मै अब लौं नहि पुजयो॥ फूट हि सों जयचन्द बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अबलौं भोगत सब आरज होइ गुलाम॥ फूटहि सों नवनन्द बिनासे गयो मगध को राज । चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सहसाज ॥ जो जग मै धन मान और बल आपुनो राखन होय। तो अपुने घर मै भूलेहू फूट करौ मति कोय॥३॥

( दूसरे अङ्क की समाप्ति और तीसरे अङ्क के आरम्भ में )

जग मै तेई चतुर कहावै। जे सब विधि अपने कारज को नीको भांति बनावै॥ पढ्यौ लिख्यौ किन होइ जुपै नहि कारज साधन जानै। ताही कों मूरख या जग मै सब कोऊ अनुमानै ॥ छल मै पातक होत जदपि यह शास्त्रन मै बहु गायो। पै अरि सो छल किए दोष नहि मुनियन यहै बतायो ॥ ४ ॥

( तीसरे अङ्क की समाप्ति और चतुर्थ अङ्क के आरम्भ मे )

ठुमरी—तिन को न कछू कबहूं बिगरे, गुरु लोगन को कहनो जे करे। जिन कों गुरु पन्थ दिखावत है ते कुपन्थ पै भूलि न पाव धरै॥ जिन कों गुरु रच्छत आप रहै ते बिगारे न बैरिन के बिगरै। गुरु को उपदेस सुनौ सब ही, जग कारज जासों सबै समरै ॥ ५ ॥

( चतुथ अङ्क की समाप्ति और पचम अङ्क के आरभ मे )

पूरबी—करि मूरख मित्र मिताई, फिर पछतैहो रे भाई। अत दगा खैहौ सिर धुनिहो रहिहौ सबै गॅवाई॥ मूरख जो कछु हितहु करै, तो तामै अन्त बुराई। उलटो उलटो काज करत सब देहै अत नसाई॥ लाख करौ हित मूरख सों पै ताहि न कछु समझाई। अन्त बुराई सिर पै ऐहै रहि जैहो मुह बाई॥ फिर पछितैहो रे भाई ॥ ६ ॥

( पचम अक की समाप्ति और षष्ठ अक के आरम्भ मे )

काफी ताल होली का ।

छलियन सों रहो सावधान नहि तो पछताओगे । इन की बातन मै फसि रहिहौ सबहि गवाओगे ॥ स्वारथ लोभी जन
५ सों आखिर दगा उठाओगे । तब सुख पैहो जब साचन सों नेह बढाओगे ॥ छलियन सों० ॥ ७ ॥

( छठे अङ्क की समाप्ति और सातवे अङ्क के आरम्भ मे )

'जिन के मन मे सिय राम बसै' इस धुन की )

जग सूरज चद टरै तो टरै पे न सज्जननेहु कबो बिचलै ।
१० धन सपति सर्बस गेह नसौ नहि प्रेम की मेड सों एक टलै ॥ सतवा दिन को तिन का सम प्रान रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै । निज मीत का प्रीत प्रतीत रहो इक और सबै जग जाउ भलै ॥ ८ ॥

( अन्त मे गाने को ) ( बिहाग—श्लोक के अर्थ अनुसार)
१५ हरौ हरि रूप सबै जग बाधा । जा सरूप सों धरनि उधारी निज जन कारज साधा ॥ जिमि तव दाढ अग्र लै राखी महि हति असुर गिरायो । कनक दृष्टि म्लेच्छन हू ।तमि किन अब लौं मारि नसायो ॥ आरज राज रूप तुम तासों मागत यह बरदाना । प्रजा कुमुदगन चन्द्र नृपति को करहु सकुल
२० कल्याना ॥ ९ ॥

( बिहाग ठुमरी )

पूरी अमी को कटोरिया सी चिरजीओ सदा विकटोरिय रानी । सूरज चद प्रकास करै जब लौं रहै सात हू सिन्धु मे पानी ॥ राज करौ सुख सोंतबलो निज पुत्र औ पौत्र समेत
२५ सयाना । पालौ प्रजागन को सुख सों जग कीरति गान करै गुन गानी ॥ १० ॥

कलिगड़ा—लहौ सुख सब बिधि भारतवासी। विद्या कला जगत की सीखौ तजि आलस की फासी॥ अपनो देस धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी। उद्यम कारकै होहु एक मति निज बल बुद्धि प्रकासी॥ पचपीर की भगति छाड़ कै ह्वै हरिचरन उपासी। जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुनरासी। ५
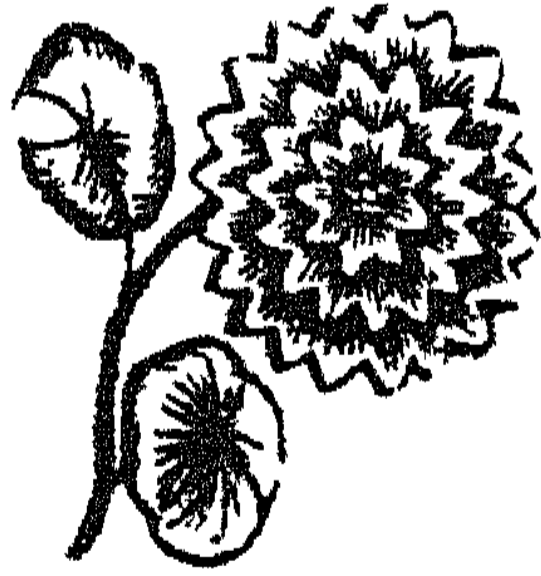
# APPENDIX B.

# उपसंहार ( अक्षर ) ख ।

इस नाटक के विषय मे विलसन साहिब लिखते है कि यह नाटक और नाटकों से अति विचित्र है, क्योंकि इस में सम्पूर्ण राजनीति के व्यवहारों का वर्णन है। चन्द्रगुप्त (जो यूनानी लोगो का सैन्ड्रोकोतस Sandrocottus है) और ५ पाटलिपुत्र, ( जो यूरप की पालीबोत्तरा Palibothra है ) के वर्णन का ऐतिहासिक नाटक होने के कारण यह विशेष दृष्टि देने के योग्य है ।

इस नाटक का कवि विशाखदत्त, महाराज पृथु का पुत्र और सामन्त वटेश्वरदत्त का पौत्र था। इस लिखने से अनुमान १० होता है कि दिल्ली के अन्तिम हिन्दूराजा पृथ्वीराज चौहान ही का पुत्र विशाखदत्त है, क्योंकि अन्तिम श्लोक से विदेशी शत्रु की जय की ध्वनि पाई जाती है, भेद इतना ही है कि रायसे मे पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और दादा का आनन्द लिखा है। मै यह अनुमान करता हूं कि सामन्तवटेश्वर १५ इतने बड़े नाम को कोई शीघ्रता मे या लघु कर के कहे तो सोमेश्वर हो सकता है और सम्भव है कि चन्द ने भाषा मे सामन्त वटेश्वर को ही सोमेश्वर लिखा हो।

मेजर विल्फर्ड ने मुद्राराक्षस के कवि का नाम गोदावरीतीर निवासी अनन्त लिखा है, किन्तु यह केवल भ्रममात्र है। २० जितनी प्राचीन पुस्तकें उत्तर वा दक्षिण में मिली, किसी में अनन्त का नाम नहीं मिला है ।

इस नाटक पर वटेश्वर मैथिल पण्डित की एक टीका भी है। कहते है कि गुहसेन नामक किसी अपर पण्डित की भी एक टीका है, किन्तु देखने में नही आई। महाराज तंजौर के पुस्तकालय में व्यासराज यज्वा की एक टीका और है।

चन्द्रगुप्त * को कथा विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों मे और बृहत्कथा मे वर्णित है। कहते है कि विकटपल्ली के राजा चद्रदास का उपाख्यान लोगों ने इन्ही कथाओ से निकाल लिया है। ५

महानन्द अथवा महापद्मनन्द भी शूद्रा के गर्भ से था, और कहते है कि चन्द्रगुप्त इस की एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था। यह पूर्वपीठिका में लिख आए है कि इन लोगो की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में यहा कुछ लिखना अवश्य हुआ। सूर्यवंशी सुदर्शन + राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व में इस नगर को बसाया। कहते हैं कि कन्या के वंध्यापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उस का नाम पाटलिपुत्र रक्खा था। वायुपुराण मे "जरासन्ध के पूर्वपुरुष वसु राजा ने बिहार प्रान्त का राज्य संस्थापन किया" यह लिखा है। कोई कहते है कि "वेदों मे जिस वसु के यज्ञ का वर्णन है वही राज्यगिरि राज्य का संस्थापक है।" ( जो लोग चरणाद्रि को राज्यगृह का पर्वत बतलाते हैं उन को केवल भ्रम है। ) इस राज्य का प्रारम्भ चाहे जिस तरह हुआ हो पर जरासन्ध ही के समय से १० १५ २०

* प्रियदर्शी, प्रियदर्शन, चंद्र, चन्द्रगुप्त, श्रीचन्द्र, चंद्रश्री, मौर्य, यह सब चन्द्रगुप्त के नाम हैं, और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रोमिल वा द्रोहिण, अंशुल, कौटिल्य, यह सब चाणक्य के नाम हैं।

+ सुदर्शन, सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामान्तर था, किसी २ ने भ्रम से पाटला का शूद्रक की कन्या लिखा है।

यह प्रख्यात हुआ। मार्टिन साहब ने जरासन्ध ही के विषय मे एक अपूर्व कथा लिखी है। वह कहते हैं कि जरासन्ध दो पहाडियों पर दो पैर रख कर द्वारका मे जब स्त्रिया नहाती थी तो ऊ चा होकर उन को घूरता था। इसी अपराध पर
५ श्रीकृष्ण ने उस को मरवा डाला ! ! !

मगध शब्द मग से बना है। कहते हैं कि "श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्ठान करने को बुलाया था और वे जिस देश मे बसे उस की मगध सज्ञा हुई।" जिन अगरेज विद्वानों ने 'मगध देश'
१० शब्द को मद्ध (मध्यदेश) का अपभ्र श माना है उन्हे शुद्ध भ्रम हो गया है जैसा कि मेजर विल्फर्ड पालीबोत्रा को राजमहल के पास गङ्गा और कोसी के सङ्गम पर बतलाते और पटने का शुद्ध नाम पद्मावती कहते हैं। यों तो पाली इस नाम के कई शहर हिन्दुस्तान मे प्रसिद्ध हैं किन्तु पालीबोत्रा पाट
१५ लिपुत्र ही है। सोन के किनारे मावलीपुर एक स्थान है जिस का शुद्ध नाम महाबलीपुर है। महाबली नन्द का नामान्तर भी है, इसी से और वहा प्राचीन चिन्ह मिलने से कोई कोई शका करते है, कि बलीपुर वा बलीपुत्र का पालीबोत्रा अपभ्र श है, किन्तु यह भी भ्रम ही है। राजाओके नाम से अनेक
२० ग्राम बसते है इस मे कोई हानि नही, किन्तु इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी।

कुछ विद्वानों का मत है कि मग लोग मिश्र से आए और यहा आकर siris और Osiris नामक देव और देवी की पूजा प्रचलित की। यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अप
२५ भ्र श बोध होते है। किसी पुराण मे "महाराज दशरथ ने शाकद्वीपियों को बुलाया" यह लिखा है। इस देश मे पहले कोल और चेरु (चोल) लोग बहुत रहते थे। शुनक और

अजक इस वश मे प्रसिद्ध हुए। कहते है कि इन दोनों को लड़ कर ब्राह्मणा ने निकाल दिया। इसी इतिहास से भुइहार जाति का भी सूत्रपात होता है और जरासन्ध के यज्ञ मे भुइहारों की उत्पत्ति वाली किम्बदन्ती इस का पोषण करती है। बहुत दिन तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहा राज्य करते रहे। किन्तु एक जैन ५ पण्डित 'जो ८०० वष ईसामसीह के पूर्व हुआ है' लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीत कर निकाल दिया। कहते है कि बिहार के पास बारागज मे इसके किले का चिन्ह भी है। यूनानी विद्वानों और वायु पुराण के मत से उदयाश्व ने मगधराज सस्थापन किया। इसका समय १० ५५० ई० पू० बतलाते है और चन्द्रगुप्त को इस से तेरहवा राजा मानते है। यूनानी लोगों ने सोन का नाम Er in iobaos (इरन्नोबाओस लिखा है, यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रश है। हिरण्यवाह, स्वर्णनद और शोण का अपभ्रश सोन है। मेगास्थिनस अपने लेख मे पटने के नगर को ८० स्टेडिया १५ (आठ मील) लम्बा और १५ चौड़ा लिखता है, जिस से स्पष्ट होता है कि पटना पूर्वकाल ही से लम्बा नगर है * उस ने उस समय नगर के चारो ओर ३० फुट गहरी खाई, फिर ऊ ची

---

* जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियो ने उस समय इस धूम से किया है उस की वर्त्तमान स्थित यह है। पटने का जिला २८ ५८' से ५° ४२' लैटि० और ८४° ४४' से ८६° ०५' लौगि० पृथ्वी २१०१ मील समचतुष्कोण १५५९६३८ मनुष्य सख्या। पटने की सीमा उत्तर गगा, पश्चिम सोन, पूर्व मु गेर का जिला और दक्षिण गया का जिला। नगर की बस्ती अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हजार घर हैं। साढे आठ लाख मन के लगभग बाहर से प्रतिवर्ष यहा माल आता और पाच लाख मन के लगभग जाता है। हिदुओ में छ जातिया यहा विशेष है। यथा एक लाख अस्सी हजार ग्वाला, एक लाख सत्तर हजार कुनबी, एक लाख सत्रह हजार भुइहार, पचासी हजार चमार, अस्सी हजार कोइरी और आठ हजार राजपूत, अब दो लाख के आस पास मुसलमान पटने के जिले में बसते हैं।

दीवार और उस मे ५७० बुर्ज और ६४ फाटक लिखे है। यूनानी लोग जो इस देश को Prassi प्रास्सि कहते है वह पलाशी का अपभ्रंश बोध होता है, क्योंकि जैनग्रन्थों मे उस भूमि के पलाश वृक्ष से आच्छादित होने का वर्णन देखा गया है।

५ जैन और बौद्धों से इस देश से और भी अनेक सम्बन्ध हैं। मसीह से छ सौ बरस पहले बुद्ध पहले पहल राजगृह ही मे उदास हो कर चले गए थे। उस समय इस देश की बड़ी समृद्धि लिखी है और राजा का नाम बिम्बसार लिखा है। (जैन लोग अपने बीसवे तीर्थङ्कर सुब्रत स्वामी का राजगृह में १० कल्याणक भी मानते है)। बिम्बसार ने राजधानी के पास ही इनके रहने को कलद नामक बिहार भी बना दिया था फिर अजातशत्रु और अशोक के समय मे भी बहुत से स्तूप बने। बौद्धों के बडे बडे धर्मसमाज इस देश मे हुए। उस काल में हिन्दू लोग इस बौद्ध धर्म के अत्यन्त विद्वेषी थे। क्या १५ आश्चर्य है कि बुद्धों के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगों ने अपवित्र ठहराया हो और गोतम की निन्दा ही के हेतु अहल्या की कथा बनाई हो।

भारत नक्षत्र नक्षत्री राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे भाग मे इस समय और देश २० के बिषय में जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते है। इस से बहुत सी बातें उस समय की स्पष्ट हो जायगी।

प्रसिद्ध यात्री हिआन साग सन ६३७ ई० मे जब भारत वर्ष मे आया था तब मगध देश हर्षवर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार मे था। किन्तु दूसरे इतिहासलेखक सन् २५ २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते है और अन्ध्रवंश का भी राज्यचिन्ह सम्भलपुर मे दिखलाते हैं।

सन् १२६२ ई० मे पहले इस देश मे मुसलमानों का राज्य हुआ। उस समय पटना, बनारस के बन्दावत राजपूत राजा इन्द्रदमन के अधिकार मे था। सन् १२२५ में अलतिमश ने गयासुद्दीन को मगध प्रान्त का स्वतन्त्र सूबेदार नियत किया। इस के थोड़े ही काल पीछे फिर हिन्दू लोग स्वतन्त्र हो गए। ५ फिर मुसलमानों ने लडकर अधिकार किया सही, किन्तु झगड़ा नित्य होता रहा। यहा तक कि सन् १३६३मे हिन्दू लोग स्वतन्त्र रूप मे फिर यहा के राजा हो गए और तीसरे महमूद की वड़ी भारी हार हुई। यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था। इस समय में गया के उद्धार के १० हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश छोड़ कर लड़ने आए *।

---

* गया के भूगोल में पण्डित शिवनारायण त्रिवेदी भी लिखते हैं—"औरगाबाद से तीन कोस अग्निकोण पर देव बडी भारी बस्ती है। यहा श्रीभगवान सूर्यनारायण का बडा भारी सगीन पश्चिम रुख का मन्दिर है। यह मन्दिर देखने से बहुत प्राचीन जान पडता है। यहा कातिक और चैत को छठ को बडा मेला लगता है। दूर दूर के लोग यहा आते और अपने लडको का मुण्डन छेदन आदि की मनौती उतारते हैं। मन्दिर से थोडी दूर दक्खिन बाजार के पूरब ओर सूर्य्यकुण्ड का तालाब है। इस तालाब से सटा हुआ और एक कच्चा तालाब है उस में कमल बहुत फूलते हैं। देव राजधानी है। यहा के राजामहाराजा उदयपुर के घराने के भडियार राजपूत हैं। इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम में बहुत प्रसिद्ध होते आये है। यहा के महाराज श्रीजयप्रकाश सिंह के० सी० एस० आई० बडे शूर सुशील और उदार मनुष्य थे। यहा से दो कोस दक्खिन कञ्चनपुर में राजा साहिब का बाग और मकान देखने लायक बना है। देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है, उस के पास पहाड के ऊपर देव के सूर्य्यमन्दिर के ढग का एक महादेव का मन्दिर है। पहाड के नीचे एक टूटा गढ भी देख पडता है। जान पडता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहा ही रहते थे, पीछे देव में बसे। देव और उमगा दोनो इन्हीं की राजधानी थी, इस से दोनो नाम साथ ही बोले जाते हैं (देवमूगा)। तिल सक्रान्ति को उमगा में बडा मेला लगता है।" इससे स्पष्ट हुआ कि उदयपुर से जो राणा लोग आये उन्ही के खानदान में देव के राजपूत हैं। और बिहारदर्पण से भी यह बात पाई जाती है कि भडियार लोग मेवाड से आये हैं।

थे और पजाब से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिन्दू मगध देश मे जाकर प्राणत्याग करना बडा पुण्य समझते थे। प्रजापाल नामक एक राजा ने सन् १४०० के लगभग बीस बरस मगध देश को स्वतन्त्र रक्खा। किन्तु आत्यमत्सरी दैव ने यह स्वतन्त्रता स्थिर नही रक्खी और पुण्यधाम गया फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। सन् १४७८ तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार म रहा। फिर बहलूलवश ने इस को जीत लिया था, किन्तु १४९१ मे सनशाह ने फिर जीत लिया। इस के पीछे बगाल के पठानो से और जोनपुर वालों से कई लड़ाई हुई और १४९४ मे दोनों राज्य मे एक सुलहनामा हो गया। इस के पीछे सूर लोगो का अधिकार हुआ और शेरशाह ने बिहार छोड कर पटने को राजधानी किया। सूरों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई०) यह देश मुगलों के अधीन हुआ और अन्त मे जरासन्ध और चन्द्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य वेश और आर्य नाम परित्याग कर के औरङ्गजेब के पोते अजीमशाह के नाम पर अपना नाम अजीमाबाद प्रसिद्ध किया। (१६९७ ई०) बगाले के सूबेदारो में सब से पहले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतन्त्र समझा था किन्तु १७५७ ई० की पलासी की लडाई मे मीरजाफर अङ्गरेजो के बल से बिहार, बगाला और उडीसा का अधिनायक हुआ। किन्तु अन्त मे जगद्विजयो अङ्गरेजो ने सन १७६३ मे पूर्व मे पटना अधिकार करके दूसरे बरस बकसर की प्रसिद्ध लड़ाई जीत कर स्वतन्त्र रूप से सिहचिन्ह की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रात मात्र को हिन्दोस्तान के मानचित्र मे लाल रङ्ग से स्थापित कर दिया।

जस्टिन (Justin) कहता है—(१) सन्द्रकुत्तस महा-पराक्रमी था। असंख्य सैन्य संग्रह कर के विरुद्ध लोगों का इस ने सामना किया था। डियोडारस सिक्यूलस (Deodorus Siculus) कहता है—(२) प्राच्यदेश के राजा जन्द्रमा के पास २०००० अश्व, २०००० पदाति, २००० रथ और ४००० हाथी थे। यद्यपि यह Xandramas शब्द चन्द्रमा का अपभ्रंश है, किन्तु कई भ्रान्त यूनानियों ने नन्द को भी इसी नाम से लिखा है। क्विन्तस करशिअस (Quintus Curtius) लिखता है—(३) चन्द्रमा के क्षौरकार पिता ने पहले मगध राज को फिर उस के पुत्रों को नाश कर के रानी के गर्भ मे अपने उत्पन्न किए हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया। स्ट्राबो (Strabo) कहता है—(४) सेल्यूकस ने मेगास्थनिस को सन्द्रकुत्तस के निकट भेजा और अपना भारतवर्षीय समस्त राज्य देकर उस से सन्धि कर लिया। ओरियन (Orriun) लिखता है—(५) मेगास्थनिस अनेक बार सन्द्रकुत्तस की सभा मे गया था। प्लूटार्क (Plutarch) ने (६) चन्द्रगुप्त को दो लक्ष सेना का नायक लिखा है। इन सब लेखो को पौराणिक वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकन्दरकृत पुरुपराजय के पीछे मगधराज मन्त्री द्वारा निहत हुए और उनके लड़के भी उसी गति को पहुंचे और उसके पीछे चन्द्रगुप्त राजा हुआ, कितु बहुत से यूनानी लेखकों ने

(1) Justin His Phellipp Lib XV Chap IV

(2) Deodorus Siculus XVII 03

(3) Quintus Curtius IX 2

(4) Strabo XV 2 9

(5) Orriun Indica X 5

(6) Plutarch Vita Alexandri O. 62

चन्द्रगुप्त को पट्टरानी के गर्भ मे क्षौरकार से उत्पन्न लिख कर व्यर्थ अपने को भ्रम मे डाला है। चन्द्रगुप्त क्षत्रियवीर्य से दासी मे उत्पन्न था यह सब साधारण का सिद्धान्त है। (७) इस क्रम से ३२७ ई० पू० मे नन्द का मरण और ३१४ ई० पू० मे चन्द्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है। पारसदेश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति सुन्दर कन्या हुई थी वही चन्द्रगुप्त को दी गई। ३०२ ई० पू० मे यह सन्धि और विवाह हुआ इसी कारण अनेक यवनसेना चन्द्रगुप्त के पास रहती थी। २९२ ई०पू० मे चन्द्रगुप्त २४ बरस राज्य कर के मरा।

चन्द्रगुप्त के इस मगधराज्य को आइनेअकबरी मे मकता लिखा है। डिग्विग्नेस ( Deguignes ) कहता है कि चीनी मगध देश को मकियात कहते है। केम्फर ( Kemfer ) लिखता है कि जापानी लोग उस को मगत् कफ कहते है। ( कफ शब्द जापानी मे देशवाची है। ) प्राचीन फारसी लेखकों ने इस देश का नाम मावाद वा मुवाद लिखा है। मगधराज्य में अनुगाग प्रदेश मिलने ही से तिब्बतवाले इस देश को अनुखेक वा अनोनखेक कहते है, और तातारवाले इस देश को एनाकाक लिखते है।

सिसली डिउडोरस ने लिखा है, कि मगधराजधानी पालीपुत्र भारतवर्षीय हर्क्यूलस ( हरि कुल ) देवता द्वारा स्थापित हुई। सिसिरो ने हर्क्यूलस ( हरिकुल ) देवता का नामान्तर बेलस ( बल ) लिखा है। बल शब्द बलदेव जी का बोध करता है और इन्ही का नामान्तर बली भी है। कहते है कि निज पुत्र अङ्गद के निमित्त बलदेव जी ने यह पुरी निर्माण की,

(७) टाड आदि कई लोगों का अनुमान है कि मेरी वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चित्तौर के राजा थे वे भी मौर्य थे। क्या चन्द्रगुप्त चौहान था? या ये मोरा सब शूद्र थे?

इसो से बलीपुत्र पुरी इस का नाम हुआ। इसी से पालीपुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया। पाली भाषा, पाली धर्म, पाली देश इत्यादि शब्द भी इसी से निकले है। कहते हैं बाणासुर के बसाए हुए जहा तोन पुर थे उन्हो को जीत कर बलदेव जी ने अपने पुत्रों के हेतु पर निर्माण किए। यह तीनों नगर ५ महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास हाते मे, एक बिदर्भदेश मे ( मुजफ्फरपुर वर्त्तमान नाम) और एक ( राजमहल वर्त्तमान नाम से ) वङ्गदेश मे है। कोई कोई बालेश्वर, मैसूर, पुरनिया प्रभृति को भी बाणासुर को राजधानी बतलाते हैं। यहा एक बात बड़ी विचित्र प्रकट होती है। बाणासुर भी १० बलीपुत्र है। क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलीपुत्र शब्द निकला हो। कोई नन्द ही का नामान्तर महाबली कहते हैं और कहते है कि पूर्व मे गङ्गा जी के किनारे नन्द ने केवल एक महल बनाया था, उसके चारों ओर लोग धीरे २ बसने लगे और फिर यह पत्तन ( पटना ) हो गया। कोई १५ महाबली के पितामह उदसी उदासी, उदय, श्रीउदय सिंह (?) ने ४५० ई० पू० इस को बसाया मानते है। कोई पाटली देवी के कारण पाटलिपुत्र नाम मानते हैं।

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम सुमाल्य लिखा है। बृहत्कथा मे लिखते हैं कि शकटाल २० ने इन्द्रदत्त का शरीर जला दिया इस से योगानन्द ( अर्थात् नन्द के शरीर मे इन्द्रदत्त की आत्मा ) फिर राजा हुआ। व्याड़ि जाने के समय शकटाल को नाश करने का मन्त्र दे गया था। वररुचि मन्त्री हुआ किन्तु योगानन्द ने मदमत्त हो कर उसको नाश करना चाहा इस से वह शकटार के घर मे २५ छिपा। उस की स्त्री उपकोशा पति को मृत समझ कर सती हो गई। योगानन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किन्तु फिर तपोवन में

चला गया। फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नन्द के नाश का कारण हुआ। उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त जो कि योगानन्द का पुत्र था उस को मार कर चन्द्रगुप्त को, जो कि असली नन्द का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया।

५ ढुंढि पण्डित लिखते है कि सर्वार्थसिद्धि नन्दों मे मुख्य था। इस को दो स्त्रिया थी। सुनन्दा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी, उस का नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहा गया और ऋषिकृत मार्जन के समय सुनदा पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी। १० मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रसन्न हो कर वरदान दिया। सुनदा को एक मासपिण्ड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने मास पिण्ड काट कर नौ टुकड़े किया, जिससे नौ लड़के हुए। मौर्य को सौ लडके थे, जिस मे चन्द्रगुप्त सब से बड़ा बुद्धि १५ मान् था। सर्वार्थसिद्धि ने नन्दों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नन्दों ने ईर्षा से मोर्य और उस के लड़कों को मार डाला, किन्तु चन्द्रगुप्त चाणक्य ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नन्दो को नाश कर के राजा हुआ।

योंही भिन्न २ कवियों और विद्वानों ने भिन्न भिन्न कथाये २० लिखी है। किन्तु सब के मूल का सिद्धान्त पास पास एक ही आता है।

इतिहासतिमिरनाशक मे इस विषय मे जो कुछ लिखा है वह नीचे प्रकाश किया जाता है।

बिम्बसार को उस के लड़के अजातशत्रु ने मार डाला। २५ मालूम होता है कि यह फसाद ब्राह्मणों ने उठाया। अजातशत्रु बौद्ध मत का शत्रु था। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध श्रावस्ति मे रहने लगा। यहा भी प्रसेनजित को उस के बेटे ने गद्दी से उठा दिया, शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु मे गया।

अजातशत्रु की दुश्मनी बौद्ध मत से धीरे धीरे बहुत कम हो गयी। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध फिर मगध में गया। पटना उस समय एक गांव था, वहां हरकारों की चौकी में ठहरा। वहां से विशाली (१) में गया। विशाली की रानी एक वेश्या थी। वहां से पावा (२) गया, वहां से कुशीनार गया। बौद्धों के लिखने बमूजिब उसी जगह सन् ईसवी ५४३ बरस पहले ८० बरस की उमर में साल के वृक्ष के नीचे बाईं करवट लेटे हुए इस का निर्वाण (३) हुआ। काश्यप उस का जानशीन हुआ। अजातशत्रु के पीछे तीन राजा अपने बाप को मार कर मगध की गद्दी पर बैठे, यहां तक कि प्रजा ने घबराकर विशाला की वेश्या के बेटे शिशुनाग मन्त्री को गद्दी पर बैठा दिया। यह बड़ा बुद्धिमान था। इस के बेटे काल अशोक ने, जिस का नाम ब्राह्मणों ने काकवर्ण भी लिखा है, पटना अपनी राजधानी बनाया।

जब सिकन्दर का सेनापति बाबेल का बादशाह सिल्यूकस सूबेदारों के तदारुक को आया, पटने से सिन्धु किनारे तक नन्द के बेटे चन्द्रगुप्त के अमल दखल में पाया, बड़ा

(१) जैनी महावीर के समय विशाली अथवा विशाला का राजा चेटक * बतलाते हैं, यह जगह पटने के उत्तर तिरहुत में है, उजड़ गयी है। वहां वाले अब उसे बसहर पुकारते हैं।

(२) जैनी यहां महावीर का निर्वाण बतलाते हैं, पर जिस जगह को अब पावापुर मानते हैं असल में वह नहीं है, पावा विशाली से पश्चिम और गंगा से उत्तर होना चाहिए।

(३) जैन अपने चौबीसवें अर्थात् सब से पिछले तीर्थंकर महावीर का निर्वाण बिक्रम के संवत से ४७०, अर्थात् सन् ईस्वी से ५२७ बरस पहले बतलाते हैं और महावीर के निर्वाण से २५० बरस पहले अपने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण मानते हैं।

* कैसे आश्चर्य की बात है, चेटक रंडी के भडुवे को भी कहते हैं (हरिश्चन्द्र)।

बहादुर था, शेर ने इस का पसीना चाटा था और जगली हाथी ने इसके सामने सिर झुका दिया था।

पुराणों मे बिम्बसार को शिशुनाग के बेटे काकवर्ण का परपोता बतलाया है और नन्दिवर्द्धन को बिम्बसार के बेटे अजातशत्रु का परपोता, और कहा है कि नन्दिवर्द्धन का बेटा महानन्द और महानन्द का बेटा शूद्री से महापद्मनन्द और इसी महापद्मनन्द और उसके आठ लडकों के बाद, जिन्हे नवनन्द कहते है, चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा। बौद्ध कहते है कि तक्षसिला के रहनेवाले चाणक्य ब्राह्मण ने धननन्द को मार के चन्द्रगुप्त को राजसिहासन पर बैठाया और वह मोरिया नगर के राजा का लड़का था और उसी जाति का था जिस मे शाक्यमुनि गोतम बुद्ध पैदा हुआ।

मेगास्थिनीज लिखता है कि पहाड़ो मे शिव और मैदान मे विष्णु पुजाते हैं। पुजारी अपने बदन रग * कर और सिर मे फूलो की माला लपेट कर घण्टा और झाझ बजाते है। एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की स्त्री ब्याह नही सकता है और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नही कर सकता है। हिन्दू घुटने तक जामा पहनते है और सिर और कन्धों पर कपडा + रखते है। जूते उन के रङ्ग बरङ्ग के चमकदार और कारचोबी के होते है। बदन पर अकसर गहने भी मिहदी से रगते है और दाढी मूछ पर खिजाब करते है। छतरी, सिवाय बड़े आदमियों के, और कोई नही लगा सकता। रथों मे लडाई के समय घोड़े और मजिल काटने के लिये बैल जोते जाते है। हाथियों पर भारी जर्दोजी झूल डालते है। सडकों की मरम्मत होती है, पुलिस का अच्छा इन्तिजाम है। चन्द्रगुप्त के लशकर

* चदन इत्यादि लगा कर।

+ अर्थात् पगड़ी दुपट्टा।

में औसत चोरी तीस रुपये रोज से जियादा नहीं सुनी जाती है। राजा जमीन की पैदावार से चौथाई लेता है।

चन्द्रगुप्त सन् ई० के ६१ बरस पहले मरा। उस के बेटे बिन्दुसार के पास यूनानी एलची दयोमेकस (Diamachos) आया था परन्तु वायुपुराण में उस का नाम भद्रसार और भागवत में बारिसार और मत्स्यपुराण में शायद बृहद्रथ लिखा है। केवल विष्णुपुराण बौद्ध ग्रन्थों के साथ बिन्दुसार बतलाता है। उस के १६ रानी थी और उन से १०१ लड़के, उन में अशोक * जो पीछे से "धर्म्मअशोक" कहलाया बहुत तेज था, उज्जैन का नाजिम था। वहां के एक सेठ × की लड़की देवी उस से ब्याही थी, उसी से महेन्द्र लड़का और संघमित्ता ( जिसे सुमित्रा भी कहते हैं ) लड़की हुई थी।

* जैनियों के ग्रन्थों में इसी का नाम अशोक भी लिखा है।

× सेठ श्रेष्ठ का अपभ्रंश है, अर्थात् जो सब से बड़ा हो।

# शेषपूरण ।

इस लेख के पढने से स्पष्ट होगा कि श्रीमान् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के सामने ही यह लेख पण्डित विनायक शास्त्री जी ने सुनाया था और इसी हेतु उन को इस विषय मे स्मरण देकर मगाया है—जो 'चन्द्रबिम्ब पूरन भये ' दोहे के ऊपर ३ पत्र के नोट पर समझना चाहिये—

५

श्री भारतेन्दु का इस उदयपुर मे शुभागमन हुआ। उस समय मुद्राराक्षस छप चुका था केवल उस के विषय मे क्रूर-ग्रह सकेतु ' इस श्लोक पर श्री ६ गुरुवर्य बापूदेव शास्त्री जी का और श्रीसुधाकर जी का आशय विचार किया गया था उस पर यही निम्न लिखित विचार श्री गुरुचरणों का ध्यान करने से हृदय मे उपस्थित हुआ सो दूसरे दिन मै ने श्री भारतेन्दु को सुनाया। उसी क्षण बड़ी प्रसन्नता से उत्तर दिया कि मुद्राराक्षस के द्वितीय सस्करण मे तुम्हारा यह विषय अवश्य ही दे दिया जायगा।

१०

इधर हरिश्चन्द्रकला का जन्म हुआ, आप का पत्र भी आया पर मै अभागी अनेक कार्यों से व्यग्र नही जानता था कि मुद्राराक्षस ही पहिले छपेगा। अस्तु, आप अपने पत्र का उत्तर और यह विषय दोनों लीजिये और "कला" के किसी अङ्क मे अङ्कित कीजिये।

१५

जिस पर विचार था वह श्लोक यह है —

२०

क्रूरग्रह सकेतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनन्तु बुधयोग ॥ १ ॥

इस का अन्वय सहित अर्थ जो ग्रहण के अर्थ को प्रकाशित करता है। स क्रूरग्रह केतु इदानी पूर्णमण्डलं चन्द्रमसं बलात् अभिभवितुमिच्छति एन बुधयोगस्तु रक्षति। यह क्रूरग्रह केतु इस समय पूरे चन्द्रमा को

२५

बलात्कार से ग्रसने चाहता है, सूर्य से बुध का योग रक्षा करता है। आङ् अव्यय मर्यादा वा अभिविधि अर्थ मे ले कर उस से इन शब्द से समास "आङ् मर्यादाभिविध्यो" इस सूत्र से करते है तब "एन" बनता है अनाङ् निषेध रहने से "निपात एकाजनाङ्" सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो के प्रकृतिभाव नही हो सकता। ५

यदि कोई कहे कि 'एन' इदम् वा एतद् शब्द से बना है तो विचारो कि "द्वितीयाटौस्स्वेन." इस सूत्र से जो इदम् वा एतद् शब्द के स्थान मे एन आदेश होता है सो "अन्वादेश" ही मे होता है। अन्वादेश उसे कहते हैं कि किसी कार्य के लिये उसी का फिर प्रयोग करना पड़े। उदाहरण—अनेन व्याकरणमधीत एनं छन्दो ऽध्यापय। अनयो पवित्र कुल एनयो प्रभूत स्वम्। इत्यादि। यहा समस्त श्लोक भर मे कही इदम् वा एतद् शब्द का प्रयोग नही है तो अन्वादेश भी नही हुआ। और अन्वादेश नही रहने से "एन" इदम् वा एतद् शब्द का व्याकरणरीति से बन नही सकता इस लिये पूर्वोक्त अर्थ करना पड़ा। १० १५

बुधाना योग बुधयोग इस अर्थ से—अधिक बुद्धिमान बुध, गुरु, शुक्र तीनों का योग सूर्य को रहने से ग्रहण नही हो सकता वा ग्रहण का अशुभफल नही हो सकता, ऐसा सूत्रधार नटी से कहता है यही अभिप्राय ठीक है। २०

पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति।

( वाराहीसंहिता राहुचार श्लोक ९७ )

अर्थ—पाच ग्रहों का संयोग होने से ग्रहण का सम्भव नही होता। यहा भी राहु, सूर्य, बुध, गुरु और शुक्र पाच ग्रहों का संयोग हुआ ही, इस लिये ग्रहण का सम्भव नही हय सूत्रधार का तात्पर्य होगा। २५

अथवा, वाराही संहिता राहुचार श्लोक ६२ देखो।

यदशुभमवलोकनाभिरूक्ष ग्रहजनित ग्रहणे प्रमोक्षणे वा।
सुरपतिगुरुणावलोकिते तच्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिद्ध ॥

अर्थ जो ग्रहजनित अशुभफल दृष्टि के वश से ग्रहण और मोक्ष समय मे कहा वह बृहस्पति की दृष्टि होने से शात हो
५ जाता है, जैसे सुलगा हुआ अग्नि जल से शात होता है। यहा भी उक्त अर्थ से बृहस्पति की दृष्टि है, अत अशुभफल नही हो सकता। यह सूत्रधार का तात्पर्य होगा—ऐसा भी कह सकते है।

उसी श्लोक का अन्वयसहित अर्थ जो चन्द्रगुप्त के अर्थ
१० को प्रकाश कर के चाणक्य के प्रवेश की प्रस्तावना करता है। इदानीं सकेतु क्रूरग्रह असम्पूर्णमडल चन्द्र बलात् अभिभवितुमिच्छति एन बुधयोगस्तु रक्षति। इस समय केतु (मलयकेतु) सहित क्रूरग्रह (राक्षस) जिस का मण्डल (राज्य) पूरा नहीं हुआ है उस चन्द्र (चन्द्रगुप्त) को बलात्कार से
१५ पराजय करने चाहता है, प्रभूनक बुद्धिमानों का (गुप्त पुरुष जो चाणक्य के भेजे थे उन का) योग तो रक्षा करता है। एन शब्द की सिद्धि पूर्वप्रकार से ही जानो, केवल भेद इतना ही है कि पहले अर्थ मे इन शब्द से सूर्य और दूसरे अर्थ मे प्रभु ( राजा वा बड़े लोक ) लेते है।"इन सूर्यें प्रभौ" नानार्थ-
२० वर्ग अमरकोष मे लिखा भी है।

साराश—इस लिखित अर्थ पर सब लोक विचार कर के फिर उस के गुण दोषों पर ध्यान देवें इतनी ही प्रार्थना है।

इति शुभम्

उदयपुर,
१८ नवम्बर } विनायक शास्त्री।
२५

---

# केतुवर्णन

कवि वचनसुधा जिल्द १२ नम्बर ४६—१८—७—८१ प्राचीन भारतवर्षीय सिद्धान्तज्ञों का केतु सम्बन्धी विचार।

जो अकस्मात् अग्नि सदृश आकाश में देख पड़े उसे केतु कहते हैं, परन्तु खद्योतादि से भिन्न हो। ये केतु तीन प्रकार के होते हैं—दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम। जिनकी स्थिति न वायु से ऊपर है वे दिव्य, जिन के रूप घोड़े, हाथी, ध्वज, वृक्षादि के सदृश होते हैं, अर्थात् जो भूवायु से उत्पन्न होते हैं वे आन्तरिक्ष और इन से भिन्न भौम हैं।

बहुत विद्वान् कहते हैं कि एक सौ एक केतु हैं, कितने कहते हैं कि हजार केतु हैं, परन्तु नारद मुनि कहते हैं कि यह एक ही केतु है अनेक रूप और स्थान बदल बदल कर दर्शन देता है।

तीन पक्ष के अनन्तर जितने दिनों तक केतुओं का दर्शन होता है उतने मास तक इनका फल होता है और जितने मास तक दर्शन होता है उतने वर्ष तक फल होता है। प्राचीनों ने इन केतुओं के रङ्ग, रूप और उदयास्त पर से संज्ञा विशेष और उन पर से शुभाशुभ ज्ञान जैसा किया है उसे हम संक्षेप से लिखते हैं। जिन केतुओं की चोटी सुवर्ण और मणि के सदृश हो और पूरब पश्चिम दोनों दिशाओं में उदय हों वे रविपुत्र कहलाते हैं और इनके उदय में राजाओं में परस्पर विरोध होता है, ऐसे पच्चीस केतु हैं। जो अग्नि दिशा में उदय होते हैं और जिनका रङ्ग लाल होता है वे अग्निपुत्र हैं, उनके उदय से संसार में भय होता है उनकी संख्या भी पच्चीस ही है।

जिनकी चोटी टेढ़ी और काली हो ऐसे केतु भी पच्चीस हैं। ये दक्षिण दिशा में उदय होते हैं, इनके उदय से मनुष्य बहुत मरते हैं, इनको मृत्युपुत्र कहते हैं। बाईस केतु ऐसे हैं

जिनको चोटी नही होती और उनका आकार दर्पण सा चिपटा और गोल होता है। रङ्ग जल मे पड़ा हुआ तैल के सदृश जान पड़ता है। ये ईशान कोण मे उदय होते है। इन के उदय से भी भय उत्पन्न होता है और इनको मङ्गलभ्रातृ कहते है। तीन केतु चन्द्रपुत्र है। इनका रूप चान्दी ऐसा श्वेत होता है, ये उत्तर दिशा मे देख पड़ते है, इनका दर्शन सुभिक्षकारक है। एक केतु ब्रह्मपुत्र है। इसको तीन चोटी होती है और तीनों तीन रङ्ग की। इसके उदय की दिशा का नियम नही, यह युगान्त मे उदय होता है।

चौरासी शुक्रपुत्र है। इनका तारा शुक्ल और बड़ा होता है और इनका उत्तर और ईशान मे उदय होता है और तीव्र फल है। साठ शनैश्चर के पुत्र है। इनको दो चोटी होती है, आकाश मे सर्वत्र इनका उदय होता है और नाम कनक है, ये अतिकष्टद है।

गुरु के पुत्र विकच्च नाम के पैसठ है, इनको चोटी नही होती, याम्य दिशा मे उदय होते है, बुरे फल देते है। तस्कर नाम के इक्यावन बुध के पुत्र है, ये स्पष्ट दिखाई नही देते और लम्बे और श्वेत होते है, सब दिशाओं मे इनका उदय होता है, ये भी बुरे फल देने वाले है। तीन चोटी के कौकुम नाम के मङ्गल के पुत्र साठ केतु है, ये उत्तर दिशा मे उदय होते है और बुरे है, तेतीस राहु पुत्र तामसकिलक नाम के है, ये रवि, चन्द्रमा के साथ देख पड़ते है, इनका फल रविचार के अधीन है। एक सौ बीस अग्नि के पुत्र विश्व-रूप नाम के है ये अग्निबाधा करने वाले है।

जिनकी चोटी चामर ऐसी और कृष्ण रङ्ग वर्ण की होती है वे वायुपुत्र हैं और उनका अरुण नाम है। ये पाप फल देनेवाले है और इनकी संख्या सतहत्तर है। बहुत तारोंवाले

प्रजापति के आठ पुत्र गणक नाम के हैं और दो सै चार ब्रह्म-सन्तान चतुर्भुजाकार हैं । बत्तीस बरुण के पुत्र कङ्का नाम के हैं, इनमे चन्द्रमा ऐसी कान्ति रहती है । ये केतु बहुत तीव्र फल को देने वाले हैं, इनका रूप बांस के वृत्तसदृश होता है, छानवे काल के पुत्र हैं इन का कबन्ध नाम है रूप भी कबन्ध ऐसा होता है, बड़े घोर दारुण फल के देनेवाले हैं । नव केतु केवल विदिशा मे उदय होते हैं इनका बड़ा और श्वेत तारा होता है, इस प्रकार से हजार केतु का फल गर्ग, पराशर और असित देवलादिकों ने कहा है । अब इन से विशेष केतुओं का फल नीचे लिखते हैं :—

जिस केतु का उदय पश्चिम भाग मे हो और उत्तर भाग मे फैला हो, मूर्त्ति चिकनी हो तो उसे बसा केतु कहते हैं यह तुरन्त ही मरगी करता है परन्तु इस के उदय से सुभिक्ष बहुत होता है ।

उसी लक्षण के अस्थिकेतु और शस्त्रकेतु भी होते हैं, परन्तु पहिला रूक्ष और दूसरा पूर्व मे उदय होता है पहिला भयप्रद और दूसरा महामारीकारक है ।

जो केतु अमावस्या मे उदय होता है और उस की चोटी मे धूम रहता है उसे कपालकेतु कहते हैं यह मरगी, अवर्षण और रोग कारक है और यह आकाश के आधे ही मे रहता है ।

इसी प्रकार का रौद्र नामक केतु है । इस की चोटी नोकीली और ताम्रवर्ण की होती है, यह आकाश के त्रिभाग मे ही चलता है । चल केतु उसे कहते हैं जिसकी चोटी का अग्र दक्षिण ओर और उचाई एक अंगुल हो और ज्यों ज्यों उत्तर की ओर चले त्यों त्यों बढ़ता जाय, सप्तऋषि अभिजित और ध्रुव को स्पर्श कर फिर लौट कर दक्षिण भाग में अस्त हो और आधे ही आकाश मे रहै । यह केतु प्रयाग से लेकर अवन्तीपुष्क-[illegible] और उत्तर मे देविकानद तक मध्यदेश और अन्य अन्य

देशों पे भी रोग, दुर्भिक्ष से प्रजा को दुःख देता है, इसका फल कोई दश मास तक और कोई अठारह मास तक रहता है।

श्वेत और कनाम का केतु ये दोनों साथ ही साथ दिन तक देख पड़ते हैं, इनका अग्र याम्यभाग मे रहता है और
५ अर्द्ध रात्रि के पूर्व ही इन का दर्शन होता है। ये दोनों सुभिक्ष और कल्याण के देनेवाले हैं।

इन में यदि केवल केतु का दर्शन हो तो दश वर्ष तक संसार में महाताप और शस्त्रकोप रहता है, श्वेत केतु जो जटाकार होता, है यदि रूक्ष हो, आकाश के त्रिभाग मे रहे, और
१० लौट कर बायें ओर से आवे तो केवल तृतीयांश प्रजा बचै और सब का नाश हो।

कृत्तिका नक्षत्र में स्थित हो कर जिस केतु का उदय हो उसे रश्मिकेतु कहते है। इस की चोटी मे धूआं रहता है इसका फल श्वेत केतु के समान है।
१५ ध्रुवकेतु का प्रमाण, वर्ण, आकृति इत्यादि नियत नहीं होते और दिव्य, आन्तरिक्ष, भौम ये तीनों भेद उस मे पाये जाते है यह अच्छा फल देनेवाला है।

राजाओ की सेना और महलों के ऊपर, वृक्ष पहाड़ और गृहों के ऊपर यह ध्रुवकेतु उनका नाश करने के लिए अकस्मात्
२० दर्शन देता है।

कुमुद केतु की श्वेत कुमुद ऐसी कांति होती है, पश्चिम मे उदय और पूर्व ओर चोटी रहती है, एक ही रात्रि देख पड़ता है, यह दश वर्ष तक सुभिक्ष करता है।

मणिकेतु की चोटी दूध ऐसी और सीधी होती है, तारा बहुत सूक्ष्म रहता है, पश्चिम भाग मे केवल एक ही दिन प्रहर
२५ तक देख पड़ता है यह साढ़े चार मास तक सुभिक्ष और क्षुद्र जतुओं की उत्पत्ति करता है। जलकेतु पश्चिम ओर देख पड़ता

और चोटी भी पश्चिम भाग मे रहती है, रूप स्वच्छ होता है। यह नव मास तक सुभिक्ष और प्राणियों को शांत रखता है।

भवकेतु एक रात्रि के पूर्व भाग मे देख पड़ता है। उसकी चोटी सिंह के पुच्छ ऐसी दक्षिण से घूमी हुई होती है। यह जै मुहूर्त्त रात्रि मे देख पड़ता है, उतने मास तक सुभिक्ष करता है परन्तु यदि रूक्ष हो तो प्राणियों का नाश करता है। ५

पद्मकेतु कमल के मृणाल ऐसा उज्ज्वल होता है और पश्चिम दिशा मे एक ही रात्रि देख पड़ता है। यह सात वर्ष तक सुभिक्ष करता है।

आवर्त्तकेतु पश्चिम भाग मे आधी रात को देख पड़ता है, इस की चोटी लाल और बाईं ओर को रहती है। यह जै मुहूर्त रात्रि मे देख पड़ता है उतने ही मास सुभिक्ष करता है। १०

सम्बर्त्तकेतु पश्चिम भाग मे सन्ध्या काल मे उदय होता है और आकाश के तृतीयांश तक फैला रहता है, इस की चोटी धूमसहित ताम्रवर्ण की होती है और उस का अग्र शूल ऐसा जान पड़ता है। यह जै मुहूर्त्त देख पड़ता है उतने वर्ष शस्त्रों के आघात से अनेक राजाओं का नाश करता है और जिस नक्षत्र पर उदय होता है उसे भी दुःख देता है। १५

बुरे केतुओं के अश्विन्यादि नक्षत्रों मे उदय होने के क्रम।

अश्मकपति, किरातराज, कलिङ्गपति, शूरसेनपति, उशीनरपति, जलजजीवपति, अश्मकपति, मगधपति, अशिकपति, अङ्गपति, पाण्ड्यपति, उज्जयिनीपति, दण्डकपति, कुरुक्षेत्रपति, काश्मीरपति, कम्बोजपति, इक्ष्वाकुपति, रत्नकपति, पुण्ड्रपति, केकयपति, सार्वभौम, अन्ध्रपति, भद्रकपति, काशीपति, चैद्यादिपति, पञ्चनदपति, सिंहलपति, अगपति, नैमिषपति, किरातपति, इन राजाओं का मरण होता है, परन्तु यदि केतु की चोटी उल्कादिकों से चोट खाय तो इन राजाओं का कल्याण २० २५

और चौल, अवगाण, सित, हूण, चीन इन देशों के राजाओं का नाश हो।

केतु को यूरप के लोग भी कुछ विशिष्ट फलकारक मानते है, परन्तु कुछ इसका पक्का विश्वास नहीं करते। यह एक प्रकार का तारा है, जिस की गति का यथार्थ निर्णय नही होता और इस की बहुत जाति है, कितने एक बार देख पडते फिर लौट कर नही आते। इस से यह जान पड़ता है कि इनकी कक्षा को यूरप के लोग (Parabola) कहते हैं और हम ने इस का नाम परवलय रक्खा है। बहुत से केतु फिर लौट कर आते हैं, इसलिए उन की कक्षा सामित है अर्थात बन्धी है, इस कक्षा को दीर्घवृत्त कहते है जिस की नाभि और केन्द्र में बहुत अन्तर होता है।

कितने केतु दो चार बार तो नियत काल पर लौट कर आते हैं फिर नही आते। इस से यह अनुमान होता है कि या तो वे केतु नष्ट हो गये अथवा उन की कक्षा बदल गयी। इन बातों से यही सिद्ध होता है कि इन के कक्षादिकों का प्रमाण यथार्थ अभी तक किसी के ध्यान मे नही आया। इसी लिये वराहमिहिर ने लिखा है कि 'दर्शनमस्तो वा गणितविधिनाऽस्य शक्यते नैव ज्ञातुम्" अर्थात् केतुओ के उदय और अस्त गणित से नही जाने जाते।

इस केतु को कई एक विद्वानों ने हिन्दी मे 'पुच्छलतारा' वा दुमदार सितारा कहा है, परन्तु प्राचीन लोगो के मत से वह केतु की शिखा अर्थात चोटी है, जिसे नये लोग पुच्छ कहते है, इस लिये हमारी समझ मे तारा पद के विशेषण मे पुच्छ के बदले शिखा अर्थात् चोटी का विशेषण देना चाहिये।

---

बांकीपुर—'खड्गविलास' प्रेस में बा० रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित।